साहित्य-मंजरी

भाग 2

कक्षा 10 'अ' पाठ्यक्रम के लिए हिंदी की पाठ्यपुस्तक

संपादक

स्नेह लता प्रसाद

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
फ़रवरी 2003
फाल्गुन 1924

PD 400T MB

ISBN 81-7450-151-7

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस	108, 100 फीट रोड, होस्डेकेरे	नवजीवन ट्रस्ट भवन	सी.डब्लू.सी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग	हेली एक्सटेंशन बनाशंकरी III इस्टेज	डाकघर नवजीवन	निकट : धनकल बस स्टॉप
नई दिल्ली 110 016	बेंगलूर 560 085	अहमदाबाद 380 014	पनिहटी, कोलकाता 700 114

प्रकाशन सहयोग

संपादन : मीरा कांत

उत्पादन : डी. साईं प्रसाद
सुनील कुमार

सज्जा एवं आवरण

कल्याण बैनर्जी

रु. 30.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटर मार्क 70 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित ।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा नारायण प्रिंटर्स एण्ड बांइडर्स, बी-6, सैक्टर-63, नौएडा, (उ.प्र.) 201 301 द्वारा मुद्रित।

आमुख

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के तत्त्वावधान में विद्यालयी स्तर पर विभिन्न शैक्षिक विषयों के लिए पाठ्यचर्या एवं तदनुरूप पाठ्यक्रम के निर्माण का कार्य लगभग चार दशकों से हो रहा है। इसी क्रम में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) लागू होने पर तद्निहित सिद्धांतों, सुझावों और उद्देश्यों के अनुसार उपयुक्त शिक्षण-सामग्री एवं पाठ्यपुस्तकों का निर्माण किया गया, जिनमें बाल-केंद्रित शिक्षा एवं शिक्षार्थियों के सर्वांगीण विकास पर विशेष बल दिया गया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में यह सुझाव भी दिया गया था कि कुछ समय के पश्चात ज्ञान-विज्ञान के विकास, सामाजिक रचना और नवीन दृष्टिकोण तथा मूल्यपरक शैक्षिक आवश्यकताओं को देखते हुए पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों में यथावश्यक संशोधन और परिवर्तन अवश्य किए जाएँ। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए *विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2000* का निर्माण हुआ। तत्पश्चात नवीन पाठ्यचर्या में सुझाए गए उद्देश्यों, जीवन मूल्यों, सूचना-संसाधनों एवं शिक्षा के व्यावहारिक पक्ष की दृष्टि से अपेक्षित शैक्षिक बिंदुओं को समाहित करते हुए विविध विषयों का एक नवीन पाठ्यक्रम तैयार किया गया। तदनुसार नवीन पाठ्यपुस्तकों के निर्माण का कार्य हाथ में लिया गया। इसी शृंखला में दसवीं कक्षा के हिंदी 'अ' पाठ्यक्रम के लिए गद्य-पद्य की इस पाठ्यपुस्तक का प्रणयन किया गया है।

इस पाठ्यपुस्तक की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

(क) पुस्तक में पाठ्यसामग्री का चुनाव शिक्षार्थियों की बौद्धिक क्षमता, रुचि तथा उनकी भाषिक दक्षता के विकास को दृष्टि में रखकर किया गया है। पाठों के चयन में जीवन के विविध संदर्भों, नागरिक के मूल कर्तव्यों, मानवाधिकार, मानवीय भावों, संवेदनाओं तथा मूल्यपरक विषयों के समावेश पर बल दिया गया है। केंद्रिक शिक्षाक्रम के घटकों से संबंधित विषयों के समावेश का भी ध्यान रखा गया है।

(ख) विविधता और रोचकता की दृष्टि से पुस्तक के गद्य खंड में वर्णनात्मक तथा विचारात्मक निबंध, ललित निबंध, रिपोर्ताज, आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, डायरी आदि विभिन्न विधाओं पर आधारित पाठ सम्मिलित किए गए हैं। इन विभिन्न विधागत पाठों के चयन में विषयों की विविधता का विशेष ध्यान रखा गया है।

(ग) पुस्तक के काव्य खंड में हिंदी साहित्य के प्रतिनिधि कवियों की रचनाओं को कवियों के कालक्रम के अनुसार सम्मिलित किया गया है ताकि शिक्षार्थी आरंभ से अद्यतन हिंदी काव्य की विकास यात्रा से परिचित हो सकें। विषय, भाव, भाषा और शैली के आधार पर सरलता और कठिनाई को ध्यान में रखते हुए कुछ कवियों की रचनाओं को नवीं कक्षा में लिया गया है और कुछ को दसवीं कक्षा में लिया जा रहा है। काव्य खंड में चयनित विषय हैं–आध्यात्मिकता, बाल सौंदर्य, भक्ति एवं नीति, प्राकृतिक सुषमा, देश-प्रेम, मानवीय गुण एवं कर्तव्य तथा आधुनिक जीवन-दृष्टि।

(घ) प्रत्येक पाठ के अंत में प्रश्न-अभ्यास दिए गए हैं, जिनसे पाठ में निहित तथ्यों, भावों, विचारों, जीवनमूल्यों एवं भाषा-शैलीगत विशेषताओं को समझने में शिक्षार्थियों को सहायता मिलेगी। इन प्रश्नों से शिक्षार्थियों में कविता के सौंदर्य तत्त्वों को समझने और सराहना करने की क्षमता का भी विकास होगा।

प्रश्न-अभ्यास में मौखिक प्रश्नों को विशेष रूप से जोड़ा गया है। इनके द्वारा शिक्षार्थियों में शुद्ध और स्पष्ट भाषा में अपने भाव एवं विचार को मौखिक रूप से व्यक्त करने की कुशलता का विकास हो सकेगा।

प्रश्न-अभ्यास में कुछ ऐसे भी प्रश्न दिए गए हैं, जिनसे शिक्षार्थियों में स्वयं सोचने एवं मौलिक रूप से अपने विचार लिखकर व्यक्त करने की क्षमता का विकास हो सके। अंत में योग्यता-विस्तार में कुछ ऐसे प्रश्न और क्रियाकलाप दिए गए हैं, जिनके द्वारा शिक्षार्थियों में पठित विषय के बारे में और अधिक ज्ञान-संवर्धन हो तथा उनमें स्वाध्याय की प्रवृत्ति भी विकसित हो सके।

प्रस्तुत पुस्तक के निर्माण में हमें अनेक शिक्षाविदों, भाषाशास्त्रियों एवं अध्यापकों का सहयोग मिला है। मैं इन सभी के प्रति हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

जिन लेखकों और कवियों ने अपनी रचनाएँ इस पाठ्यपुस्तक में सम्मिलित किए जाने की अनुमति दी है, उनके प्रति मैं विशेष रूप से अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

इस पुस्तक के परिष्कार के लिए शिक्षाविदों, शिक्षकों और शिक्षार्थियों द्वारा व्यक्त प्रतिक्रियाओं और सुझावों का हम सदैव स्वागत करेंगे।

जगमोहन सिंह राजपूत

निदेशक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली

अक्टूबर 2002

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के सदस्य

1. डॉ. विद्यानिवास मिश्र
पूर्व कुलपति
संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी तथा महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

2. श्री निरंजन कुमार सिंह
अवकाश प्राप्त प्रवाचक
रा.शै.अ.प्र.प., नई दिल्ली

3. डॉ. माणिक गोविंद चतुर्वेदी
अवकाश प्राप्त प्रोफ़ेसर
केंद्रीय हिंदी संस्थान, दिल्ली

4. डॉ. आनंद प्रकाश व्यास
अवकाश प्राप्त प्रवाचक
केंद्रीय शिक्षा संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

5. डॉ. मानसिंह वर्मा
पूर्व अध्यक्ष
हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ

6. डॉ. कृष्ण कुमार गोस्वामी
प्रोफ़ेसर
केंद्रीय हिंदी संस्थान, दिल्ली

7. डॉ. अनिरुद्ध राय
अवकाश प्राप्त प्रोफ़ेसर
रा.शै.अ.प्र.प., नई दिल्ली

8. डॉ. प्रभात कुमार
प्रवाचक
हंसराज कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

9. डॉ. रमेश दवे
एल.आई.जी.-276, कोटरा सुल्तानाबाद, भोपाल

10. डॉ. नीरा नारंग
वरिष्ठ प्रवक्ता
केंद्रीय शिक्षा संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

11. डॉ. सुरेश पंत
अवकाश प्राप्त प्रवक्ता
रा.उ.मा. बाल विद्यालय, जनकपुरी, दिल्ली

12. श्री प्रभाकर द्विवेदी
अवकाश प्राप्त मुख्य संपादक
रा.शै.अ.प्र.प., नई दिल्ली

13. डॉ. कमल सत्यार्थी
अवकाश प्राप्त उपप्रधानाचार्य
सरदार पटेल विद्यालय, दिल्ली

14. कु. कुसुम लता अग्रवाल
टी.जी.टी.
सर्वोदय बाल विद्यालय, रमेश नगर, दिल्ली

15. श्री अमर गोस्वामी
स्वतंत्र लेखक
बी.एफ. 5, शर्मा मार्किट, अट्टा, सैक्टर 27, नोएडा

16. श्री अशोक शुक्ल
टी.जी.टी.
सर्वोदय सहशिक्षा विद्यालय, एफ.यू.ब्लाक पीतमपुरा, दिल्ली

17. मो. इमरान
टी.जी.टी.
एंग्लो-अरेबिक उ.मा.विद्यालय, अजमेरी गेट, दिल्ली

18. श्री सत्यनारायण शर्मा
पी.जी.टी.
केंद्रीय विद्यालय,ए.जी.सी.आर. कालोनी, दिल्ली

19. डॉ. राम निवास
प्रवक्ता
क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, रा.शै.अ.प्र.प., अजमेर

20. कु. इंद्रा सक्सेना
पी.जी.टी.
डी.एम. स्कूल, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, अजमेर

एन.सी.ई.आर.टी. संकाय
सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग

21. डॉ. सत्येंद्र वर्मा
प्रोफ़ेसर

22. डॉ. प्रमोद कुमार दुबे
प्रवक्ता

23. डॉ. (कु.) स्नेह लता प्रसाद (**समन्वयक**)
प्रवाचक

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51 क

मूल कर्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे; और

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू सके।

विषय - क्रम



गद्य - खंड

भूमिका

प्रस्तुत संकलन दसवीं कक्षा के उन शिक्षार्थियों के लिए तैयार किया गया है जिनकी मातृभाषा हिंदी है और जो नवीं कक्षा तक प्रथम भाषा के रूप में हिंदी का विधिवत अध्ययन करते आए हैं। इस संकलन की पाठ्य-सामग्री के चयन में नवीनता, स्तर-अनुकूलता, विषयगत विविधता और विधागत विशेषता को यथोचित महत्त्व दिया गया है। पुराने लेखकों की रचनाओं के साथ नए लेखकों की रचनाओं का समावेश इस उद्देश्य से किया गया है कि शिक्षार्थी नवीन साहित्यिक प्रवृत्तियों तथा अद्यतन भाषा-शैली का भी परिचय प्राप्त कर सकें।

गद्य-पाठों का क्रमायोजन कालक्रम अथवा विधाओं के अनुसार न करके 'सरलता से कठिनता की ओर' के शैक्षणिक सूत्र को ध्यान में रखकर किया गया है। विषयों, विधाओं और शैलियों की विविधताओं के ताने-बाने द्वारा इस खंड को रोचक और ज्ञानवर्धक बनाने का भरसक प्रयत्न किया गया है। आशा है, इन गद्य-पाठों को पढ़कर शिक्षार्थियों की रुचियों और योग्यताओं का संतुलित विकास हो सकेगा और वे गद्य साहित्य के उत्तरोत्तर उत्कर्ष से परिचित हो सकेंगे।

इस खंड में निबंध, व्यंग्य, ललित निबंध, कहानी, संस्मरण, रिपोर्ताज, डायरी आदि विधाओं की रचनाएँ संगृहीत हैं। इन विधाओं से संबंधित पाठों के चयन में विषयवस्तु, निहित जीवन मूल्यों, भाषा-शैली तथा प्रस्तुतीकरण की रोचकता और विविधता का ध्यान रखा गया है। इससे शिक्षार्थी इन विधागत शैलियों से परिचय प्राप्त कर स्वयं सृजनात्मक लेखन की ओर प्रवृत्त हो सकेंगे।

इस पुस्तक में निबंधों को इसलिए अधिक स्थान दिया गया है, क्योंकि ये गहन अध्ययन के लिए विशेष उपयोगी होते हैं। निबंध में विषयवस्तु के प्रतिपादन, लेखक के व्यक्तित्व की व्यंजना तथा अभिव्यंजना शैली के सूक्ष्म अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है।

प्रत्येक पाठ के अंत में प्रश्न-अभ्यास दिए गए हैं। इनसे पाठ्यवस्तु तथा भाषिक तत्त्वों के अध्ययन तथा उनके सम्यक बोध में सहायता मिलेगी। प्रश्न-अभ्यास में मौखिक प्रश्नों को भी स्थान दिया गया है, जिससे शिक्षार्थियों की मौखिक अभिव्यक्ति की क्षमता का संवर्धन हो सकेगा।

वस्तुतः यह पाठ्यसामग्री एक साधन मात्र है, साध्य तो है भाषा की प्रकृति को समझना तथा कथ्य और अभिव्यक्ति संबंधी विशेषताओं को परख सकना। इस पुस्तक को आधार बनाकर ये सभी भाषा-योग्यताएँ सरलता से विकसित की जा सकती हैं।

यहाँ हिंदी गद्य साहित्य का विकास संक्षेप में दिया जा रहा है। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से विद्यार्थियों को पाठ्यसामग्री के अध्ययन में सहायता मिलेगी।

हिंदी गद्य का विकास

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में नवजागरण की चेतना से गद्य का प्रारंभ, प्रयोग और प्रचलन हुआ। इसीलिए आधुनिक काल को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने गद्य काल कहा है। इस गद्य काल की शुरुआत भारतेंदु-युग से मानी जाती है। ऐसा मानने का प्रधान कारण यह है कि नए विचारों की अभिव्यक्ति के लिए लेखकों ने खड़ी बोली गद्य में नए ढंग से एवं नए गद्य रूपों में लिखना शुरू किया। किंतु हिंदी गद्य की अपनी स्वतंत्र पहचान 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विकसित हुई। इस शताब्दी में भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक नवजागरण की जो लहर देश में फैली थी, उसका प्रभाव कला, संस्कृति एवं साहित्य के सभी क्षेत्रों पर पड़ा। इसके फलस्वरूप जनमानस में नवीन विचारों का उदय हुआ। इसी चेतना को अभिव्यक्ति देने के माध्यम के रूप में हिंदी गद्य-साहित्य का विकास हुआ।

सन 1800 में कलकत्ता (कोलकाता) में फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हुई। यहाँ गिलक्राइस्ट की देख-रेख में खोले गए हिंदुस्तानी विभाग में हिंदी और उर्दू को भी स्थान मिला। इसी फ़ोर्ट विलियम कॉलेज में 'भाखा मुंशी' के पद पर कार्य करते हुए लल्लू लाल जी तथा सदल मिश्र ने क्रमशः 'प्रेमसागर' तथा 'नासिकेतोपाख्यान' नामक ग्रंथों की रचना की। इन ग्रंथों की भाषा पर यद्यपि ब्रज भाषा की छाप है, तथापि खड़ी बोली गद्य के संस्कार प्रबलता से मिलते हैं। उसी समय स्वतंत्र रूप से हिंदी गद्य लिखने वालों में मुंशी सदासुखलाल तथा इंशा अल्ला खाँ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। सदासुखलाल का 'सुखसागर' और इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' में तत्कालीन गद्य के उदाहरण मिलते हैं।

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक नवजागरण के इसी प्रकाश में समाज सुधारक दयानंद सरस्वती ने (जिनकी मातृभाषा गुजराती थी) जनहित को ध्यान में रखकर हिंदी को अपनी

अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। उन्होंने संस्कृत में लिखे ग्रंथों का स्वयं हिंदी में अनुवाद किया और अपना लोकप्रसिद्ध ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' हिंदी में ही लिखा। इस ग्रंथ ने अनेक प्रबुद्ध लोगों को हिंदी गद्य में लिखने के लिए प्रेरित किया। नवजागरण की इसी चेतना को भारतेंदु ने हिंदी भाषा और हिंदी गद्य में समाहित किया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने कई गद्य विधाओं का प्रवर्तन किया, जैसे – नाटक, कहानी, निबंध आदि। नवजागरण की एक माँग यह भी थी कि पूरे समाज का आधुनिक रूप में गठन किया जाए और यह कार्य साहित्य के क्षेत्र में पद्य से ज़्यादा गद्य ही कर सकता था।

नवजागरण की व्यापक सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति के लिए नाटक, उपन्यास, निबंध, कहानी, संस्मरण, जीवनी, पत्र-पत्रिकाएँ आदि ही उपयुक्त माध्यम हो सकते थे। कहना न होगा कि भारतेंदु-युग के लेखक पं. बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, राधाकृष्ण दास, बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन', कार्तिक प्रसाद खत्री, ठाकुर जगमोहन सिंह, किशोरी लाल गोस्वामी आदि सभी ने नवीन गद्य विधाओं को विकसित करने में सहयोग दिया। भारतीय जनता की मुक्ति-चेतना का नया स्वर साम्राज्यवाद विरोधी था। इसी स्वर की प्रखर अभिव्यक्ति इस युग की पत्रिकाओं में हुई। भारतेंदु ने 'कवि वचन सुधा', 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन', 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' में, पं. बालकृष्ण भट्ट ने 'हिंदी प्रदीप' में, प्रतापनारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण' में तथा प्रेमघन जी ने 'आनंद कादंबिनी' जैसी पत्र-पत्रिकाओं में ब्रिटिश साम्राज्य विरोधी विचारों को खुलकर व्यक्त किया। हिंदी गद्य के विकास और प्रसार में भारतेंदु-युग की इन पत्र-पत्रिकाओं का योगदान बहुत अधिक है। इन पत्रों में नाटक, आलोचना, निबंध, संस्मरण, जीवनी आदि निकलते रहे। इस गद्य ने, चाहे वह 'अंधेर नगरी' नाटक हो या श्रीनिवास दास का उपन्यास 'परीक्षा गुरु' हो या बालकृष्ण भट्ट की निबंध आलोचनाएँ हों या राधाकृष्ण दास की संतों, कवियों पर लिखी गईं जीवनियाँ-संस्मरण हों, जनता में नए विचारों के बीज बोए। इस प्रकार के साहित्य ने देश-भक्ति, स्वदेशाभिमान, स्वभाषा तथा स्वदेशी की भावनाओं को प्रकट किया।

हिंदी गद्य के विकास में अनुवादों की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण रही है। स्वयं भारतेंदु ने बँगला, मराठी, संस्कृत, अंग्रेज़ी से प्रचुर अनुवाद-कार्य किया। ठाकुर जगमोहन सिंह, काशीनाथ खत्री, बालकृष्ण भट्ट भी अनुवाद के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य करते रहे। भारतेंदु-युग का गद्य नए विषयों, नए विचारों, नई विधाओं और शैलियों को लेकर आया

था। लोक-जीवन की समस्याओं से जुड़ने की चिंता, नए ज्ञान-विज्ञान को लाने का प्रयत्न तथा जनता में फैले रूढ़िवाद को तोड़कर लोक-जागरण लाने का संकल्प इस काल के गद्य की सबसे बड़ी उपलब्धि रही है।

हिंदी गद्य में भाव और भाषा दोनों क्षेत्रों में परिष्कार और संस्कार द्विवेदी-युग में हुआ। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका तथा बालमुकुंद गुप्त ने 'भारत मित्र' से हिंदी की सर्वांग उन्नति का बीड़ा उठाया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से जब उनके एक मित्र ने पूछा, आपकी राय में अच्छी हिंदी कौन लिखता है? तब उन्होंने उत्तर दिया, अच्छी हिंदी बस एक व्यक्ति लिखता है — बालमुकुंद गुप्त। गुप्त जी लंबे समय तक प्रतापनारायण मिश्र के सहयोगी थे और उन्होंने 'भारत मित्र' में आचार्य द्विवेदी की रचनाएँ छापी थीं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा बालमुकुंद गुप्त उच्चकोटि के पत्रकार, निबंधकार, सुलझे जीवनी-लेखक, आत्मकथा-लेखक तथा हिंदी भाषा के अधिकारों के लिए निरंतर संघर्ष करने वाले व्यक्ति थे। द्विवेदी-युग के गद्य ने जागरण और सुधार-युग की मुक्ति-चेतना को निर्भीकता से प्रस्तुत किया। आलोचना, निबंध तथा साहित्य के इतिहास-लेखन में यह कार्य आचार्य रामचंद्र शुक्ल, बाबू श्यामसुंदर दास आदि ने किया। ज्ञान-विज्ञान के अनेक क्षेत्रों का परिचय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कराया।

कहानी तथा उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचंद का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रेमचंद की रचनाओं से हिंदी कथा साहित्य का पुराना मनोरंजन प्रधान मुहावरा ही बदल गया। उन्होंने समय और समाज की राजनीति को समझते हुए लगभग तीन सौ कहानियाँ तथा 'निर्मला', 'सेवा सदन', 'कर्मभूमि', 'गबन', 'रंगभूमि' और 'गोदान' जैसे उपन्यास लिखकर जनता को वास्तविक समस्याओं से परिचित कराया। इस काल के अन्य गद्य लेखकों में अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', रामनरेश त्रिपाठी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, सरदार पूर्णसिंह, विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक', सुदर्शन, माधव शुक्ल, गणेश शंकर विद्यार्थी तथा माखन लाल चतुर्वेदी के नाम अग्रगण्य हैं। 'प्रभा', 'प्रताप' तथा 'कर्मवीर' जैसी पत्रिकाओं के विविधतापरक लेखन ने हिंदी गद्य में क्रांति उपस्थित कर दी। यदि भारतेंदु-युग ने इस हिंदी गद्य को जन्म दिया तो इसे समृद्धि प्रदान की द्विवेदी-युग ने।

छायावाद के समानांतर निबंध और आलोचना के क्षेत्र में प्रखर लेखन रामचंद्र शुक्ल ने किया है। शुक्ल जी ने दो तरह के निबंध लिखे –'श्रद्धा', 'भक्ति' जैसे भावों-मनोविकारों से संबंधित निबंध और 'कविता क्या है' जैसे सैद्धांतिक आलोचना के निबंध। बाबू गुलाबराय, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, कृष्णशंकर शुक्ल, लक्ष्मी नारायण 'सुधांशु' और सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने निबंधों से हिंदी गद्य को ऊँचाई पर पहुँचाया। जयशंकर प्रसाद ने कहानियों तथा उपन्यासों से हिंदी कथा-साहित्य को समृद्ध किया। उन्होंने अपने निबंधों और नाटकों के माध्यम से हिंदी गद्य में विचार-गांभीर्य और लालित्य दोनों का समावेश किया। निराला जी ने 'लिली' जैसे उपन्यास, 'कुल्ली भाट' जैसी जीवनी; 'बिल्लेसुर बकरिहा' जैसे संस्मरण लिखकर हिंदी गद्य-विधाओं की नई संभावनाओं का पथ प्रशस्त किया। महादेवी वर्मा ने रेखाचित्रों के क्षेत्र में 'पथ के साथी', 'स्मृति की रेखाएँ', 'अतीत के चलचित्र', 'शृंखला की कड़ियाँ' तथा अनेक निबंधों से हिंदी गद्य को एक नया रूप और कलेवर प्रदान किया।

इसी समय आलोचना के क्षेत्र में आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, शांतिप्रिय द्विवेदी और डॉ. नगेंद्र ने महत्त्वपूर्ण रचनाएँ प्रस्तुत कीं। इन आलोचकों ने अपने निबंधों से हिंदी गद्य को प्रांजल बनाया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के ललित और शोधपरक निबंधों तथा 'बाणभट्ट की आत्मकथा' जैसी औपन्यासिक कृतियों ने हिंदी गद्य को समृद्धि प्रदान की।

छायावादोत्तर युग में हिंदी गद्य-विधाओं की नवीनता और प्रौढ़ता का एक विशाल परिदृश्य है जो उसके उत्तरोत्तर उत्कर्ष का सूचक है। कथा-साहित्य के क्षेत्र में जैनेंद्र कुमार, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', इलाचंद्र जोशी, यशपाल, अमृतलाल नागर जैसी अमर प्रतिभाएँ सामने आईं। जैनेंद्र का 'त्यागपत्र', अज्ञेय का 'शेखर एक जीवनी', यशपाल का 'झूठा सच', इलाचंद्र जोशी का 'संन्यासी', अमृतलाल नागर का 'मानस का हंस' इस क्षेत्र की उपलब्धियाँ हैं। नई कहानी आंदोलन में कमलेश्वर, मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, कामतानाथ, कृष्णा सोबती, विष्णु प्रभाकर, फणीश्वरनाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह, ज्ञानरंजन, शैलेश मटियानी जैसी प्रतिभाएँ उभरकर सामने आईं।

नाटक के क्षेत्र में मोहन राकेश, उपेंद्रनाथ अश्क, जगदीशचंद्र माथुर, रामकुमार वर्मा, लक्ष्मीनारायण मिश्र, लक्ष्मीनारायण लाल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, शंकर शेष जैसी

प्रतिभाओं के आने से हिंदी का आधुनिक नाटक और रंगमंच गौरवान्वित हुआ है। नाट्य-समीक्षा के क्षेत्र में नेमिचंद्र जैन का नाम उल्लेखनीय है। एकांकी नाटक के क्षेत्र में नए प्रयोग हुए हैं। रामकुमार वर्मा, उदयशंकर भट्ट, भुवनेश्वर, जगदीशचंद्र माथुर आदि के एकांकी अभिनय एवं कला की दृष्टि से सराहनीय हैं।

हिंदी गद्य साहित्य में आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण और रेखाचित्र के नए क्षेत्रों का विस्तार हुआ है। अंबिकादत्त व्यास का 'निजवृत्तांत', स्वामी श्रद्धानंद का 'कल्याण मार्ग' आत्मकथा के उदाहरण हैं। इस विधा की परवर्ती रचनाओं में वियोगी हरि का 'मेरा जीवन-प्रवाह', कालिदास कपूर कृत 'मुदर्रिस की रामकहानी', विनोदशंकर व्यास की 'उलझी स्मृतियाँ', आचार्य चतुरसेन शास्त्री की 'मेरी आत्मकहानी', राहुल सांकृत्यायन की 'मेरी जीवन यात्रा', हरिवंशराय 'बच्चन' की 'क्या भूलूँ, क्या याद करूँ', 'नीड़ का निर्माण फिर', 'बसेरे से दूर', 'दश द्वार से सोपान तक' आदि प्रमुख हैं। जीवनी के क्षेत्र में अमृतराय की 'कलम का सिपाही', रामविलास शर्मा कृत 'निराला की साहित्य साधना', विष्णु प्रभाकर रचित 'आवारा मसीहा' प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। संस्मरण के क्षेत्र में महादेवी वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, विष्णु प्रभाकर, उपेंद्रनाथ अश्क, रामवृक्ष बेनीपुरी, प्रभाकर माचवे, बनारसीदास चतुर्वेदी जैसे साहित्यकारों का विशेष योगदान रहा है। रेखाचित्रकारों में महादेवी वर्मा और रामवृक्ष बेनीपुरी का नाम अग्रगण्य है। इस विधा को देवेंद्र सत्यार्थी, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने भी लोकप्रिय बनाया।

निबंध की एक नवीन विधा ललित निबंध के रूप में विकसित हुई है जिसमें काव्यात्मकता और सरसता दोनों का आनंद आता है। इस विधा का विकास हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, विवेकी राय, रमेशचंद्र शाह आदि लेखकों ने किया है।

हिंदी गद्य की नवीन विधाओं में पत्र-साहित्य, यात्रा-वृत्तांत, साक्षात्कार (इंटरव्यू), रिपोर्ताज आदि का भी निरंतर विकास हो रहा है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने पत्र-साहित्य की एक खास पहचान बनाई है। इनके अतिरिक्त बनारसीदास चतुर्वेदी, हरिवंशराय 'बच्चन', विजयेंद्र स्नातक, नरेश मेहता, मोहन राकेश आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। राहुल सांकृत्यायन के घुमक्कड़ शास्त्र ने यात्रा-वृत्तांत लेखन को नवीन दिशा प्रदान की है।

रामधारी सिंह 'दिनकर' (देश-विदेश), यशपाल (लोहे की दीवार), भगवतशरण उपाध्याय (वो दुनिया, कलकत्ता से पेकिंग, सागर की लहरों पर), अमृतराय (सुबह के रंग), रामवृक्ष बेनीपुरी (पैरों में पंख बाँधकर), अज्ञेय (अरे यायावर रहेगा याद?, एक बूँद सहसा उछली), मोहन राकेश (आखिरी चट्टान तक), कलात्मक और मनोरम यात्रा-वृत्तांत हैं। राजेंद्र अवस्थी, कमलेश्वर, रघुवंश, प्रभाकर द्विवेदी, हिमांशु जोशी और प्रदीप पंत के यात्रा-वृत्त भी रोचक और आकर्षक हैं। रामधारी सिंह 'दिनकर', मोहन राकेश और रमेशचंद्र शाह ने डायरी विधा को ऊँचाइयों पर पहुँचाया है। रिपोर्ताज के क्षेत्र में रांगेय राघव के 'तूफ़ानों के बीच', धर्मवीर भारती के 'ब्रह्मपुत्र के मोरचे पर' तथा कन्हैयालाल नंदन के 'ज़रिया-नज़रिया' ने एक नई दिशा दी है।

हिंदी गद्य के इस वैविध्यपूर्ण और समृद्ध साहित्य को देखकर कहा जा सकता है कि हिंदी गद्य का विकास अनेक दिशाओं में हो रहा है।

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' का जन्म उत्तर प्रदेश के सहारनपुर ज़िले में सन 1906 में हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा स्थानीय स्कूलों में हुई। उच्च शिक्षा प्राप्त करते समय ही वे स्वाधीनता आंदोलन में कूद पड़े। फलस्वरूप उनकी शिक्षा पूरी न हो सकी।

आज़ादी की लड़ाई में भाग लेने के कारण उन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। छोटी उम्र से ही वे अखबारों में लिखने लगे थे। पत्रकारिता से वे साहित्य के क्षेत्र में आ गए।

उन्होंने कलकत्ता (अब कोलकाता) से प्रकाशित होने वाले 'ज्ञानोदय' नामक पत्र का अनेक वर्षों तक सफल संपादन किया। सहारनपुर में अपना छापाखाना स्थापित करने के बाद उन्होंने अपनी पत्रिका 'नया जीवन' का प्रकाशन शुरू किया। उन्होंने पूरी पत्रिका को अकेले ही तैयार कर पाठकों तक पहुँचाने का सारा काम स्वयं करने का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया। संस्मरण एवं रेखाचित्र के क्षेत्र में यह पत्रिका बेजोड़ थी। इसके कारण उन्हें विशेष प्रसिद्धि मिली।

सन 1990 में हिंदी सेवाओं के लिए उन्हें पद्मश्री की उपाधि से अलंकृत किया गया।

प्रभाकर जी के चिंतन पर गांधीवादी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव है। उनकी हर रचना में समाज एवं परिवार को सुखी बनाने का उद्देश्य दिखाई पड़ता है। उनकी शैली सजीव, आत्मीय, नाटकीय एवं मर्मस्पर्शी होती है। छोटी से छोटी बात को भी सहजता से कह जाने में मिश्र जी पारंगत हैं। नवीनता और ताज़गी उनकी रचनाओं की विशेषता है।

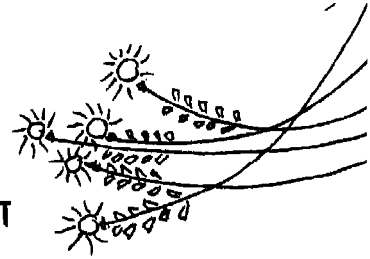
प्रभाकर जी ने हिंदी साहित्य को अनेक अविस्मरणीय रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज और ललित निबंध प्रदान किए हैं। उनकी प्रमुख पुस्तकों के नाम इस प्रकार हैं –

ज़िंदगी मुस्कराई, माटी हो गई सोना, आकाश के तारे, धरती के फूल, महके आँगन चहके द्वार, बाजे पायलिया के घुँघरू, दीप जले शंख बजे, जिएँ तो ऐसे जिएँ।

इनकी मृत्यु सन 1995 में हुई।

पाठ में संकलित निबंध **मैं और मेरा देश** राष्ट्रीयता की भावना से उत्प्रेरित एक विचारात्मक निबंध है। इस निबंध में लेखक ने 'मैं' और 'देश' को अभिन्न मानते हुए अपने स्वत्व को मिटा देश की शक्ति, गरिमा और सौंदर्य की अभिवृद्धि में नागरिक के कर्तव्यों को रेखांकित किया है। उदाहरण, उद्धरण और सूक्ति शैली का सहारा लेते हुए छोटे-छोटे सधे वाक्यों द्वारा लेखक ने अपनी बात को सफलतापूर्वक पुष्ट और स्थापित किया है।

मैं और मेरा देश



मैं अपने घर में जन्मा था, पला था।

अपने पड़ोस में खेलकर, पड़ोसियों की ममता-दुलार पा बड़ा हुआ था।

अपने नगर में घूम-फिरकर वहाँ के विशाल समाज का संपर्क पा, वहाँ के संचित ज्ञान-भंडार का उपयोग कर, उसे अपनी सेवाओं का दान दे, उसकी सेवाओं का सहारा पा और इस तरह एक मनुष्य से एक भरा पूरा नगर बनकर मैं खड़ा हुआ था।

मैं अपने नगर के लोगों का सम्मान करता था, वे भी मेरा सम्मान करते थे।

मुझे बहुतों की अपने लिए ज़रूरत पड़ती थी। मैं भी बहुतों की ज़रूरत का उनके लिए जवाब था।

इस तरह मैं समझ रहा था कि मैं अपने में अब पूरा हो गया हूँ, पूरा फैल गया हूँ, पूरा मनुष्य हो गया हूँ।

मैं सोचा करता था कि मेरी मनुष्यता में अब कोई अपूर्णता नहीं रही, मुझे अब कुछ न चाहिए, जो चाहिए, वह सब मेरे पास है — मेरा घर, मेरा पड़ोस, मेरा नगर और मैं। वाह, कैसी सुंदर, कैसी संगठित और कैसी पूर्ण है मेरी स्थिति!

एक दिन आनंद की इस दीवार में एक दरार पड़ गई और तब मुझे सोचना पड़ा कि अपने घर, अपने पड़ोस, अपने नगर की सीमाओं में ममता, सहारा, ज्ञान और आनंद के उपहार पाकर भी मेरी स्थिति एकदम हीन है और हीन भी इतनी कि मेरा कहीं भी कोई अपमान कर सकता है—एक मामूली अपराधी की तरह और मुझे यह भी अधिकार नहीं कि मैं उस अपमान का बदला लेना तो दूर रहा, उसके लिए कहीं अपील या दया-प्रार्थना ही कर सकूँ।

"क्या कोई भूकंप आया था, जिससे दीवार में यह दरार पड़ गई?"

बड़े महत्त्व का प्रश्न है। इस अर्थ में भी कि यह बात को खिलने का, आगे बढ़ने का अवसर देता है और इस अर्थ में भी कि ठीक समय पर पूछा गया है। ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने में एक अपूर्व आनंद आता है, तो उत्तर यह है आपके प्रश्न का :

जी हाँ, एक भूकंप आया था, जिससे दीवार में यह दरार पड़ गई और लीजिए, आपको कोई नया प्रश्न न पूछना पड़े, इसलिए मैं अपनी ओर से ही कहे दे रहा हूँ कि यह दीवार थी मानसिक विचारों की, मानसिक विश्वासों की। इसलिए यह भूकंप भी किसी प्रांत या प्रदेश में नहीं उठा, मेरे मानस में ही उठा था।

"मानस में भूकंप उठा था?"

हाँ, जी, मानस में भूकंप उठा था और भूकंप में कहीं कोई धरती थोड़े ही हिली थी, आकाश थोड़े ही काँपा था, एक तेजस्वी पुरुष का अनुभव ही वह भूकंप था, जिसने मुझे हिला दिया।

वे तेजस्वी पुरुष थे स्वर्गीय पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय। अपने महान राष्ट्र की पराधीनता के दीन दिनों में जिन लोगों ने अपने रक्त से गौरव के दीपक जलाए और जो घोर अंधकार और भयंकर बवंडरों के झकझोरों में जीवन भर खेल, उन दीपकों को बुझने से बचाते रहे, उन्हीं में एक थे हमारे लाला जी। उनकी कलम और वाणी दोनों में तेजस्विता की ऐसी किरणें थीं कि वे फूटतीं, तो अपने मुग्ध हो जाते और पराए भौचक।

वे उन्हीं दिनों सारे संसार में घूमे थे। उनके व्यक्तित्व के गठन में उनके परिवार, उनके पास-पड़ोस और उनके नगर ने अपने सर्वोत्तम रत्नों की जोत उन्हें भेंट दी थी। अजी, क्या बात थी उनके व्यक्तित्व की! क्या देखने में, क्या सुनने में, वे एक अपूर्व मनुष्य थे। कौन था भला ऐसा, जिस पर वे मिलते ही छा न जाते। संसार के देशों में घूमकर वे अपने देश में लौटे, तो उन्होंने अपना सारा अनुभव एक ही वाक्य में भरकर बिखेर दिया। वह अनुभव ही तो वह भूकंप था, जिसने मेरी पूर्णता की ठसक को अपूर्णता की कसक में बदल दिया।

उनका वह अनुभव यह था, " मैं अमेरिका गया, इंग्लैंड गया, फ्रांस गया और संसार के दूसरे देशों में भी घूमा, पर जहाँ भी मैं गया, भारतवर्ष की गुलामी की लज्जा का कलंक मेरे माथे पर लगा रहा। "

क्या सचमुच यह अनुभव एक मानसिक भूकंप नहीं है, जो मनुष्य को झकझोर कर कहे कि किसी मनुष्य के पास संसार के ही नहीं, यदि स्वर्ग के भी सब उपहार और साधन हों, पर उसका देश गुलाम हो या किसी भी दूसरे रूप में हीन हो, तो वे सारे उपहार और साधन उसे गौरव नहीं दे सकते?

इस अनुभव की छाया में मैं सोचता हूँ कि मेरा यह कर्तव्य है कि मुझे निजी रूप में सारे संसार का राज्य भी क्यों न मिलता हो, मैं कोई ऐसा काम न करूँ, जिससे मेरे देश की स्वतंत्रता को, दूसरे शब्दों में उसके सम्मान को धक्का पहुँचे, उसकी किसी भी प्रकार की शक्ति में कमी आए। साथ ही उसके एक नागरिक के रूप में मेरा यह अधिकार भी है कि अपने देश के सम्मान का पूरा-पूरा भाग मुझे मिले और उसकी शक्तियों से अपने सम्मान की रक्षा का मुझे, जहाँ भी मैं हूँ, भरोसा रहे।

अजी भला, एक आदमी अपने इतने बड़े देश के लिए कर ही क्या सकता है? फिर कोई बड़ा वैज्ञानिक हो, तो वह अपने आविष्कारों से ही देश को कुछ बल दे-दे या फिर कोई बहुत बड़ा धनपति हो, तो वह अपने धन का भामाशाह की तरह समय पर त्याग कर ही देश के काम आ सकता है, पर हरेक आदमी न तो ऐसा वैज्ञानिक ही हो सकता है, न धनिक ही। फिर जो बेचारा अपनी ही दाल-रोटी की फ़िक्र में लगा हुआ हो, वह अपने देश के लिए चाहते हुए भी क्या कर सकता है?

आपका प्रश्न विचारों को उत्तेजना देता है, इसमें संदेह नहीं, पर इसमें भी कोई संदेह नहीं कि इसमें जीवन-शास्त्र का घोर अज्ञान भी भरा हुआ है। अरे भाई, जीवन कोई आपके मुन्ने की गुड़िया थोड़े ही है कि आप कह सकें कि बस यह है, इतना ही है। वह तो एक विशाल समुद्र का तट है, जिस पर हरेक अपने लिए स्थान पा सकता है।

लो, एक और बात बताता हूँ आपको। जीवन को दर्शनशास्त्रियों ने बहुमुखी बताया है, उसकी अनेक धाराएँ हैं। सुना नहीं आपने कि जीवन एक युद्ध है और युद्ध में लड़ना ही तो कोई एक काम नहीं होता। लड़ने वालों को रसद न पहुँचे, तो वे कैसे लड़ें? किसान ठीक खेती न उपजाएँ तो रसद पहुँचाने वाले क्या करें और लो, जाने दो बड़ी-बड़ी बातें, युद्ध में जय बोलने वालों का भी महत्त्व है।

"जय बोलने वालों का?"

हाँ, जी, युद्ध में जय बोलने वालों का बहुत महत्त्व है। कभी मैच देखने का तो अवसर मिला ही होगा आपको? देखा नहीं आपने कि दर्शकों की तालियों से खिलाड़ियों के पैरों में बिजली लग जाती है और गिरते खिलाड़ी उभर जाते हैं। कवि-सम्मेलनों और मुशायरों की सारी सफलता दाद देने वालों पर ही निर्भर करती है। इसलिए मैं अपने देश का कितना

भी साधारण नागरिक क्यों न हूँ, अपने देश के सम्मान की रक्षा के लिए बहुत कुछ कर सकता हूँ। "अकेला चना क्या भाड़ फोड़े!" यह कहावत मैं अपने अनुभव के आधार पर ही आपसे कह रहा हूँ कि सौ फ़ीसदी झूठ है। इतिहास साक्षी है, बहुत बार अकेले चने ने ही भाड़ फोड़ा है और ऐसा फोड़ा है कि भाड़ खील-खील ही नहीं हो गया, उसका निशान तक ऐसा छूमंतर हुआ कि कोई यह भी न जान पाया कि वह बेचारा आखिर था कहाँ?

मैं जानता हूँ इतिहास की गहराइयों में उतरने का यह समय नहीं है, पर दो छोटी कहानियाँ तो सुन ही सकते हैं आप ! और कहानियाँ भी न प्रेमचंद की न एंटन चेखोव की, दो युवकों के जीवन की दो घटनाएँ हैं, पर उन दो घटनाओं में वह गाँठ इतनी साफ़ है, जो नागरिक और देश को एक साथ बाँधती है कि आप बड़ी-बड़ी पुस्तकें पढ़कर भी उसे इतनी साफ़ नहीं देख सकते।

हमारे देश के महान संत स्वामी रामतीर्थ एक बार जापान गए। वे रेल में यात्रा कर रहे थे कि एक दिन ऐसा हुआ कि उन्हें खाने को फल न मिले और उन दिनों फल ही उनका भोजन था। गाड़ी एक स्टेशन पर ठहरी,तो वहाँ भी उन्होंने फलों की खोज की पर वे पा न सके। उनके मुँह से निकला, "जापान में शायद अच्छे फल नहीं मिलते!"

एक जापानी युवक प्लेटफ़ार्म पर खड़ा था। वह अपनी पत्नी को रेल में बैठाने आया था, उसने ये शब्द सुन लिए। सुनते ही वह अपनी बात बीच में ही छोड़कर भागा और कहीं दूर से एक टोकरी ताज़े फल लाया। वे फल उसने स्वामी रामतीर्थ को भेंट करते हुए कहा, "लीजिए, आपको ताज़े फलों की ज़रूरत थी।"

स्वामी जी ने समझा यह कोई फल बेचने वाला है और उनके दाम पूछे, पर उसने दाम लेने से इनकार कर दिया। बहुत आग्रह करने पर उसने कहा, "आप इनका मूल्य देना ही चाहते हैं, तो वह यह है कि आप अपने देश में जाकर किसी से यह न कहिएगा कि जापान में अच्छे फल नहीं मिलते।"

स्वामी जी युवक का यह उत्तर सुन मुग्ध हो गए। वे क्या मुग्ध हो गए उस युवक ने अपने इस कार्य से अपने देश का गौरव जाने कितना बढ़ा दिया!

इस गौरव की ऊँचाई का अनुमान आप दूसरी घटना सुनकर पूरी तरह लगा सकेंगे। एक दूसरे देश का निवासी एक युवक जापान शिक्षा लेने आया। एक दिन वह सरकारी पुस्तकालय

से कोई पुस्तक पढ़ने को लाया। इस पुस्तक में कुछ दुर्लभ चित्र थे। ये चित्र इस युवक ने पुस्तक में से निकाल लिए और पुस्तक वापस कर आया। किसी जापानी विद्यार्थी ने वह देख लिया और पुस्तकालय को उसकी सूचना दे दी। पुलिस ने तलाशी लेकर वे चित्र उस विद्यार्थी के कमरे से बरामद किए और उस विद्यार्थी को जापान से निकाल दिया गया।

मामला यहीं तक रहता, तो कोई बात न थी। अपराधी को दंड मिलना ही चाहिए पर मामला यहीं तक नहीं रुका और उस पुस्तकालय के बाहर बोर्ड पर लिख दिया गया कि उस देश का (जिसका वह विद्यार्थी था) कोई निवासी इस पुस्तकालय में प्रवेश नहीं कर सकता।

मतलब साफ़ है, एक दम साफ़ कि जहाँ एक युवक ने अपने काम से अपने देश का सिर ऊँचा किया था, वहीं एक युवक ने अपने काम से अपने देश के मस्तक पर कलंक का ऐसा टीका लगाया, जो जाने कितने वर्षों तक संसार की आँखों में उसे लांछित करता रहा।

इन घटनाओं से क्या यह स्पष्ट नहीं है कि हरेक नागरिक अपने देश के साथ बँधा हुआ है और देश की हीनता और गौरव का ही फल उसे नहीं मिलता, उसकी हीनता और गौरव का फल भी उसके देश को मिलता है।

मैं अपने देश का एक नागरिक हूँ और मानता हूँ कि मैं ही अपना देश हूँ। जैसे मैं अपने लाभ और सम्मान के लिए हरेक छोटी-छोटी बात पर ध्यान देता हूँ, वैसे ही मैं अपने देश के लाभ और सम्मान के लिए भी छोटी-छोटी बातों तक पर ध्यान दूँ, यह मेरा कर्तव्य है और जैसे मैं अपने सम्मान और साधनों से अपने जीवन में सहारा पाता हूँ, वैसे ही देश के सम्मान और साधनों से भी सहारा पाऊँ, यह मेरा अधिकार है। बात यह है कि मैं और मेरा देश दो अलग चीज़ तो हैं ही नहीं!

मैंने जो कुछ जीवन में अध्ययन और अनुभव से सीखा है, वह यही है कि महत्त्व किसी कार्य की विशालता में नहीं है, उस कार्य के करने की भावना में है। बड़े-से-बड़ा कार्य हीन है, यदि उसके पीछे अच्छी भावना नहीं है और छोटे-से-छोटा कार्य भी महान है, यदि उसके पीछे अच्छी भावना है।

महान कमालपाशा उन दिनों अपने देश तुर्की के राष्ट्रपति थे। राजधानी में उनकी वर्षगाँठ बहुत धूमधाम से मनाई गई। देश के लोगों ने उस दिन लाखों रुपए के उपहार उन्हें भेंट किए।

वर्षगाँठ का उत्सव समाप्त कर जब वे अपने भवन के ऊपर चले गए तो एक देहाती बूढ़ा उन्हें वर्षगाँठ का उपहार भेंट करने आया। सेक्रेटरी ने कहा, "अब तो समय बीत गया है।" बूढ़े ने कहा, "मैं तीस मील से पैदल चलकर आ रहा हूँ, इसीलिए मुझे देर हो गई है।"

राष्ट्रपति तक उसकी सूचना भेजी गई। कमालपाशा विश्राम के वस्त्र बदल चुके थे। वे उन्हीं कपड़ों में नीचे चले आए और उन्होंने आदर के साथ बूढ़े किसान का उपहार स्वीकार किया। यह उपहार मिट्टी की छोटी-सी हँड़िया में पाव-भर शहद था, जिसे बूढ़ा स्वयं तोड़कर लाया था। कमालपाशा ने हँड़िया को स्वयं खोला और उसमें दो उँगलियाँ भरकर चाटने के बाद तीसरी उँगली शहद में भरकर बूढ़े के मुँह में दे दी। बूढ़ा निहाल हो गया।

राष्ट्रपति ने कहा, "दादा, आज सर्वोत्तम उपहार तुमने ही मुझे भेंट किया, क्योंकि इसमें तुम्हारे हृदय का शुद्ध प्यार है।" उन्होंने आदेश दिया कि राष्ट्रपति की शाही कार में शाही सम्मान के साथ उनके दादा को गाँव तक पहुँचाया जाए।

क्या वह शहद बहुत कीमती था? क्या उसमें मोती-हीरे मिले हुए थे? ना, उस शहद के पीछे उसके लाने वाले की भावना थी, जिसने उसे सौ लालों का एक लाल बना दिया।

हमारे देश में भी एक ऐसी ही घटना घटी थी। एक किसान ने रंगीन सुतलियों से एक खाट बुनी और उसे रेल में रखकर वह दिल्ली लाया। दिल्ली स्टेशन से उस खाट को अपने कंधे पर रखे, वह भारत के प्रधानमंत्री पंडित नेहरू की कोठी पर पहुँचा। पंडित जी कोठी से बाहर आए तो वह खाट उसने उन्हें दी। पंडित जी को देखकर, वह इतना भाव-मुग्ध हो गया कि कुछ कह ही न सका। पंडित जी ने पूछा, "क्या चाहते हो तुम?"

उसने कहा, "यही कि आप इसे स्वीकार करें।" प्रधानमंत्री ने उसका यह उपहार प्यार से स्वीकार किया और अपना एक फ़ोटो दस्तखत करके उसे स्वयं भी उपहार में दिया। जिस दस्तखती फ़ोटो के लिए देश के बड़े-बड़े लोग, विद्वान और धनी तरसते हैं, वह क्या उस मामूली खाट के बदले में दिया गया था? ना, वह तो उस खाट वाले की भावना का ही सम्मान था!

"क्यों जी, हम यह कैसे जान सकते हैं कि हमारा काम देश के अनुकूल है या नहीं?"

वाह, क्या सवाल पूछा है, आपने! सवाल क्या, बातचीत में आपने तो एक कीमती मोती ही जड़ दिया यह, पर इसके उत्तर में सिर्फ़ 'हाँ' या 'ना' से काम न चलेगा। मुझे थोड़ा विवरण देना पड़ेगा।

हम अपने कार्यों को देश के अनुकूल होने की कसौटी पर कसकर चलने की आदत डालें, यह बहुत उचित है, बहुत सुंदर है, पर हम इसमें तब तक सफल नहीं हो सकते, जब तक कि हम अपने देश की भीतरी दशा को ठीक-ठीक न समझ लें और उसे हमेशा अपने सामने न रखें।

हमारे देश को दो बातों की सबसे पहले और सबसे ज़्यादा ज़रूरत है। एक शक्ति-बोध और दूसरा सौंदर्य-बोध! बस, हम यह समझ लें कि हमारा कोई भी काम ऐसा न हो जो देश में कमज़ोरी की भावना को बल दे या कुरुचि की भावना को।

"ज़रा अपनी बात को और स्पष्ट कर दीजिए।" यह आपकी राय है और मैं इससे बहुत ही खुश हूँ कि आप मुझसे यह स्पष्टता माँग रहे हैं।

क्या आप चलती रेलों में, मुसाफ़िरखानों में, क्लबों में, चौपालों पर और मोटर-बसों में कभी ऐसी चर्चा करते हैं कि हमारे देश में यह नहीं हो रहा है, वह नहीं हो रहा है और यह गड़बड़ है, वह परेशानी है? साथ ही क्या इन स्थानों में या इसी तरह के दूसरे स्थानों में आप कभी अपने देश के साथ दूसरे देशों की तुलना करते हैं और इस तुलना में अपने देश को हीन और दूसरे देशों को श्रेष्ठ सिद्ध करते हैं?

यदि इन प्रश्नों का उत्तर 'हाँ' है, तो आप देश के शक्ति-बोध को भयंकर चोट पहुँचा रहे हैं और आपके हाथों देश के सामूहिक मानसिक बल का ह्रास हो रहा है। सुनी है आपने शल्य की बात? वह महाबली कर्ण का सारथी था। जब भी कर्ण अपने पक्ष की विजय की घोषणा करता, हुंकार भरता, वह अर्जुन की अजेयता का एक हलका-सा उल्लेख कर देता। बार-बार इस उल्लेख ने कर्ण के सघन आत्मविश्वास में संदेह की तरेड़ डाल दी, जो उसकी भावी पराजय की नींव रखने में सफल हो गई।

अच्छा, आप इस तरह की चर्चा कभी नहीं करते, तो मैं आपसे दूसरा प्रश्न पूछता हूँ। क्या आप कभी केला खाकर छिलका रास्ते में फेंकते हैं! अपने घर का कूड़ा बाहर फेंकते हैं? मुँह से गंदे शब्दों में गंदे भाव प्रकट करते हैं? इधर की उधर, उधर की इधर लगाते हैं?

अपना घर, दफ़्तर, गली, गंदा रखते हैं? होटलों, धर्मशालाओं में या दूसरे ऐसे ही स्थानों में, ज़ीनों में, कोनों में पीक थूकते हैं? उत्सवों, मेलों, रेलों और खेलों में ठेलमठेल करते हैं, निमंत्रित होने पर समय से लेट पहुँचते हैं या वचन देकर भी घर आने वालों को समय पर नहीं मिलते और इसी तरह किसी भी रूप में क्या सुरुचि और सौंदर्य को आपके किसी काम से ठेस लगती है?

यदि आपका उत्तर हाँ है, तो आपके द्‌वारा देश के सौंदर्य-बोध को भयंकर आघात लग रहा है और आपके द्‌वारा देश की संस्कृति को गहरी चोट पहुँच रही है।

"क्या कोई ऐसी कसौटी भी बनाई जा सकती है, जिससे देश के नागरिकों को आधार बनाकर देश की उच्चता और हीनता को हम तौल सकें?"

लीजिए चलते-चलते आपके इस प्रश्न का भी उत्तर दे ही दूँ। इस उच्चता और हीनता की कसौटी है, चुनाव!

जिस देश के नागरिक यह समझते हैं कि चुनाव में किसे अपना मत देना चाहिए और किसे नहीं, वह देश उच्च है और जहाँ के नागरिक गलत लोगों के उत्तेजक नारों या व्यक्तियों के गलत प्रभाव में आकर मत देते हैं, वह हीन है।

इसीलिए मैं कह रहा हूँ कि मेरा, यानी हरेक नागरिक का यह कर्तव्य है कि जब भी कोई चुनाव हो, ठीक मनुष्य को अपना मत दे और मेरा अधिकार है कि मेरा मत लिए बिना कोई भी आदमी, वह संसार का सर्वश्रेष्ठ महापुरुष ही क्यों न हो, किसी अधिकार की कुरसी पर न बैठ सके।

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. किस प्रकार की दीवार में दरार पड़ गई थी और क्यों?
2. लेखक ने किस अनुभव को भूकंप कहा है?
3. लाला लाजपतराय के किस कथन ने लेखक में पूर्णता की भावना को समाप्त कर दिया?
4. दो युवकों के जीवन की घटनाएँ सुनाकर लेखक क्या सिद्ध करना चाहता है?
5. लेखक ने देश के नागरिकों की उच्चता की कसौटी किसे माना है और क्यों?

लिखित

1. लेखक मनुष्य से एक भरा-पूरा नगर बनकर कैसे खड़ा हुआ था? आशय स्पष्ट कीजिए।
2. सब कुछ पाकर भी लेखक ने अपनी स्थिति को एकदम हीन क्यों कहा?
3. लाला लाजपत राय में क्या-क्या विशेषताएँ थीं?
4. मानसिक भूकंप के फलस्वरूप लेखक ने अपने लिए क्या-क्या कर्तव्य निर्धारित किए?
5. लेखक के इस कथन को सिद्ध कीजिए कि 'मैं और मेरा देश' दो अलग चीज़ तो हैं ही नहीं।
6. 'जय बोलने वालों का भी बहुत महत्त्व है' – अपने अनुभव के आधार पर इस कथन की सार्थकता सिद्ध कीजिए।
7. हमारे देश को सबसे पहले किन दो बातों की ज़रूरत है? क्यों?
8. अपने देश के गौरव और सम्मान की रक्षा के लिए किस प्रकार के चरित्र निर्माण की आवश्यकता है?
9. लेखक ने देश के नागरिकों को आम चुनावों में किन बातों पर ध्यान देने का सुझाव दिया है?

10. **आशय स्पष्ट कीजिए**

(क) वह अनुभव ही तो वह भूकंप था, जिसने मेरी पूर्णता की ठसक को अपूर्णता की कसक में बदल दिया।

(ख) इतिहास साक्षी है, बहुत बार अकेले चने ने ही भाड़ फोड़ा है और ऐसा फोड़ा है कि भाड़ खील-खील ही नहीं हो गया, उसका निशान तक ऐसा छूमंतर हुआ कि कोई यह भी न जान पाया कि वह बेचारा आखिर था कहाँ?

(ग) मैंने जो कुछ जीवन में अध्ययन और अनुभव से सीखा है, वह यही है कि महत्त्व किसी कार्य की विशालता में नहीं है, उस कार्य के करने की भावना में है। बड़े से बड़ा कार्य हीन है, यदि उसके पीछे अच्छी भावना नहीं है और छोटे से छोटा कार्य भी महान है, यदि उसके पीछे अच्छी भावना है।

भाषा-अध्ययन

1. हिंदी में संज्ञा के साथ 'ई' प्रत्यय लगाने से विशेषण और भाववाचक संज्ञा बनते हैं, जैसे–

विशेषण	**भाववाचक संज्ञा**
देहात+ई = देहाती	गुलाम+ई = गुलामी
दस्तखत+ई = दस्तखती	नौकर+ई = नौकरी

उपर्युक्त दोनों प्रकार के दो-दो शब्द पाठ से ढूँढ़कर लिखिए।

2. निम्नलिखित मिश्र वाक्यों से प्रधान उपवाक्य और आश्रित उपवाक्य छाँटकर अलग-अलग लिखिए–

(क) मैं समझ रहा था कि मैं अपने में अब पूरा हो गया हूँ।

(ख) एक नागरिक के रूप में मेरा यह अधिकार भी है कि अपने देश के सम्मान का पूरा-पूरा भाग मुझे मिले।

(ग) उन्होंने आदेश दिया कि राष्ट्रपति की शाही कार में शाही सम्मान के साथ उनके दादा को गाँव तक पहुँचाया जाए।

योग्यता-विस्तार

1. विश्व के इतिहास से कुछ ऐसे उदाहरणों का संकलन कीजिए जो 'अकेला चना क्या भाड़ फोड़े' कहावत को झुठलाते हैं।

2. 'देश के गौरव में हमारा गौरव है और देश की हीनता में हमारी हीनता'– इस विषय पर कक्षा में परिचर्चा कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

मानस	:	मन, चित्त
बवंडर	:	मुसीबतें, तेज़ आँधियाँ
झकझोर	:	भीषण संघर्ष
तेजस्विता	:	तेज से पूर्ण
भौचक	:	चकित, हैरान
जोत	:	ज्योति, प्रकाश
ठसक	:	ऐंठ, शान
कसक	:	पीड़ा, टीस
भामाशाह	:	एक धनी सेठ जिसने अपनी सारी संपत्ति विपत्ति में महाराणा प्रताप को सौंप दी, जिसकी सहायता से महाराणा प्रताप ने पुनः अपनी सेना संगठित की
रसद	:	सेना के लिए खाद्य-सामग्री
मुशायरा	:	उर्दू कवि-सम्मेलन
एंटन चेखोव	:	रूसी कहानीकार
लांछित	:	कलंकित
निहाल	:	अतिप्रसन्न, पूर्ण रूप से तुष्ट
कसौटी	:	एक काला पत्थर जिस पर सोना घिसकर परखा जाता है, जाँच, परख
तरेड़	:	दरार
ठेलमठेल	:	धक्कम-धक्का
आघात	:	चोट, प्रहार
उत्तेजक	:	भड़काने वाला

रामवृक्ष बेनीपुरी

रामवृक्ष बेनीपुरी का जन्म सन 1902 में बिहार के मुज़फ़्फ़रपुर जनपद के अंतर्गत बेनीपुर गाँव में हुआ। बचपन में ही माता-पिता की छत्र-छाया उठ जाने के कारण उनको उनकी मौसी ने पाला। प्रारंभिक शिक्षा गाँव में ही हुई, किंतु मैट्रिक पास करने से पहले ही वे गांधी जी के असहयोग आंदोलन में शामिल हो गए। परिणामस्वरूप उन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। छोटी उम्र से ही वे अखबारों में लिखने लग गए थे। आगे चलकर वे पत्रकार बन गए। पत्रकारिता के माध्यम से वे साहित्य के क्षेत्र में आए। उन्होंने 'तरुण भारत', 'किसान मित्र', 'बालक', 'युवक', 'कर्मवीर', 'हिमालय' और 'नई धारा' जैसी पत्रिकाओं का संपादन भी किया।

उन्होंने साहित्य की सभी प्रमुख गद्य विधाओं में रचना की, यथा – नाटक, उपन्यास, कहानी, रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज आदि।

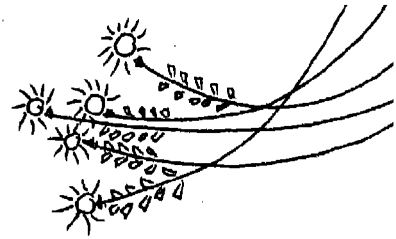
बेनीपुरी एक शैलीकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनकी शैली में ओज है। अपनी जीवंत भाषा और अलंकारपूर्ण शैली के कारण वे पाठकों को विशेष रूप से प्रभावित करते हैं। ललित निबंधों के क्षेत्र में उन्हें विशेष ख्याति मिली है।

उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं –

माटी की मूरतें, लाल तारा, गेहूँ और गुलाब, मशाल, ज़ंजीर, दीवारें, पैरों में पंख बाँधकर। उनकी समस्त रचनाएँ **बेनीपुरी ग्रंथावली** नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं।

उनका देहांत सन 1968 में हुआ।

नींव की ईंट एक रोचक और प्रेरक ललित निबंध है। इस निबंध में लेखक ने स्वतंत्रता से पूर्व के देशभक्तों के बलिदान की सराहना की है और स्वातंत्र्योत्तर भारत में कुरसी की सत्ता हथियाने की आपाधापी की प्रवृत्ति की भर्त्सना। "अफ़सोस, कंगूरा बनने के लिए चारों ओर होड़ा-होड़ी और धक्कम-धक्का लगी है, नींव की ईंट बनने की कामना ही लुप्त हो गई है।" लेखक का यह निष्कर्ष छात्रों के लिए विचारोत्तेजक है – सात लाख गाँवों का नव-निर्माण! हज़ारों शहरों और कारखानों का नव-निर्माण! कोई शासक इसे संभव कर नहीं सकता। ज़रूरत है ऐसे नौजवानों की, जो इस काम में अपने को चुपचाप खपा दें।



नींव की ईंट

वह जो चमकीली, सुंदर, सुघड़ इमारत है; वह किसपर टिकी है? इसके कंगूरों को आप देखा करते हैं, क्या कभी आपने इसकी नींव की ओर भी ध्यान दिया है?

दुनिया चकमक देखती है, ऊपर का आवरण देखती है, आवरण के नीचे जो ठोस सत्य है उसपर कितने लोगों का ध्यान जाता है?

ठोस 'सत्य' सदा 'शिवम्' होता ही है, किंतु वह हमेशा ही 'सुंदरम्' भी हो यह आवश्यक नहीं।

सत्य कठोर होता है, कठोरता और भद्दापन साथ-साथ जन्मा करते हैं, जिया करते हैं।

हम कठोरता से भागते हैं, भद्देपन से मुख मोड़ते हैं – इसीलिए सत्य से भी भागते हैं।

नहीं तो, हम इमारत के गीत नींव के गीत से प्रारंभ करते।

वह ईंट धन्य है, जो कट-छँटकर कंगूरे पर चढ़ती है और बरबस लोक-लोचनों को अपनी ओर आकृष्ट करती है।

किंतु, धन्य है वह ईंट, जो ज़मीन के सात हाथ नीचे जाकर गड़ गई और इमारत की पहली ईंट बनी!

क्योंकि इसी पहली ईंट पर उसकी मज़बूती और पुख्तेपन पर सारी इमारत की अस्ति-नास्ति निर्भर करती है।

उस ईंट को हिला दीजिए, कंगूरा बेतहाशा ज़मीन पर आ रहेगा।

कंगूरे के गीत गानेवाले हम, आइए, अब नींव के गीत गाएँ।

वह ईंट, जो ज़मीन में इसलिए गड़ गई कि दुनिया को इमारत मिले, कंगूरा मिले!

वह ईंट, जो सब ईंटों से ज़्यादा पक्की थी, जो ऊपर लगी होती तो कंगूरे की शोभा सौ गुनी कर देती!

किंतु, जिसने देखा, इमारत की पायदारी उसकी नींव पर मुनहसिर होती है, इसलिए उसने अपने को नींव में अर्पित किया।

वह ईंट, जिसने अपने को सात हाथ ज़मीन के अंदर इसलिए गाड़ दिया कि इमारत ज़मीन के सौ हाथ ऊपर तक जा सके।

वह ईंट, जिसने अपने लिए अंधकूप इसलिए कबूल किया कि ऊपर के उसके साथियों को स्वच्छ हवा मिलती रहे, सुनहली रोशनी मिलती रहे।

वह ईंट, जिसने अपना अस्तित्व इसलिए विलीन कर दिया कि संसार एक सुंदर सृष्टि देखे।

सुंदर सृष्टि! सुंदर सृष्टि, हमेशा ही बलिदान खोजती है, बलिदान ईंट का हो या व्यक्ति का।

सुंदर इमारत बने, इसलिए कुछ पक्की-[illegible] लाल ईंटों को चुपचाप नींव में जाना है।

सुंदर समाज बने, इसलिए कुछ तपे-तपाए लोगों को मौन-मूक शहादत का लाल सेहरा पहनना है।

शहादत और मौन-मूक! जिस शहादत को शोहरत मिली, जिस बलिदान को प्रसिद्‌धि प्राप्त हुई, वह इमारत का कंगूरा है – मंदिर का कलश है।

हाँ, शहादत और मौन मूक! समाज की आधारशिला यही होती है।

ईसा की शहादत ने ईसाई धर्म को अमर बना दिया, आप कह लीजिए। किंतु मेरी समझ से ईसाई धर्म को अमर बनाया उन लोगों ने, जिन्होंने उस धर्म के प्रचार में अपने को अनाम उत्सर्ग कर दिया।

उनमें से कितने ज़िंदा जलाए गए, कितने सूली पर चढ़ाए गए, कितने वन-वन की खाक छानते जंगली जानवरों के शिकार हुए, कितने उससे भी भयानक भूख-प्यास के शिकार हुए।

उनके नाम शायद ही कहीं लिखे गए हों – उनकी चर्चा शायद ही कहीं होती हो।

किंतु, ईसाई धर्म उन्हीं के पुण्य-प्रताप से फल-फूल रहा है।

वे नींव की ईंट थे, गिरजाघर के कलश उन्हीं की शहादत से चमकते हैं।

आज हमारा देश आज़ाद हुआ सिर्फ़ उनके बलिदानों के कारण नहीं, जिन्होंने इतिहास में स्थान पा लिया है।

देश का शायद कोई ऐसा कोना हो, जहाँ कुछ ऐसे दधीचि नहीं हुए हों, जिनकी हड्डियों के दान ने ही विदेशी वृत्रासुर का नाश किया।

हम जिसे देख नहीं सकें, वह सत्य नहीं है, यह है मूढ़ धारणा! ढूँढ़ने से ही सत्य मिलता है। हमारा काम है, धर्म है, ऐसी नींव की ईंटों की ओर ध्यान देना।

सदियों के बाद नए समाज की सृष्टि की ओर हमने पहला कदम बढ़ाया है।

इस नए समाज के निर्माण के लिए भी हमें नींव की ईंट चाहिए।

अफ़सोस, कंगूरा बनने के लिए चारों ओर होड़ा-होड़ी मची है, नींव की ईंट बनने की कामना लुप्त हो रही है!

सात लाख गाँवों का नव-निर्माण! हज़ारों शहरों और कारखानों का नव-निर्माण! कोई शासक इसे संभव नहीं कर सकता। ज़रूरत है ऐसे नौजवानों की, जो इस काम में अपने को चुपचाप खपा दें।

जो एक नई प्रेरणा से अनुप्राणित हों, एक नई चेतना से अभिभूत, जो शाबाशियों से दूर हों, दलबंदियों से अलग।

जिनमें कंगूरा बनने की कामना न हो, कलश कहलाने की जिनमें वासना न हो। सभी कामनाओं से दूर – सभी वासनाओं से दूर।

उदय के लिए आतुर हमारा समाज चिल्ला रहा है। हमारी नींव की ईंटें किधर हैं?

देश के नौजवानों को यह चुनौती है!

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. हम इमारत के गीत नींव के गीत से प्रारंभ क्यों नहीं करते हैं?
2. बेनीपुरी जी ने समाज की आधारशिला किसे माना है?
3. उन्होंने सत्य से भागने के क्या कारण दिए हैं?
4. कंगूरे के गीत कौन गाता है? लेखक उन्हें नींव की ईंट के गीत गाने के लिए क्यों कहता है?
5. लेखक ईसाई धर्म को अमर बनाने का श्रेय किन्हें देना चाहता है और क्यों?

लिखित

1. नींव की ईंट के प्रति मनुष्य का व्यवहार इस सत्य को कैसे प्रतिपादित करता है कि 'मनुष्य की प्रवृत्ति कठोरता और भद्देपन से भागने की रही है'?
2. मौन बलिदान को समाज की आधारशिला क्यों कहा गया है?
3. नींव की ईंट और समाज के अनाम शहीदों के बलिदान के उद्देश्यों में आपको क्या समानता दिखाई देती है?
4. आज हम नींव की ईंट बनने की अपेक्षा कंगूरे की ईंट बनने के लिए क्यों उतावले दिखाई देते हैं?
5. इस पाठ में लेखक किनका आह्वान कर रहा है और क्यों?
6. नींव की ईंट और कंगूरे की ईंट किस-किस का प्रतिनिधित्व करती हैं? लेखक ने इनके माध्यम से किस सत्य को उजागर करने का प्रयत्न किया है?
7. **आशय स्पष्ट कीजिए**

   (क) वह ईंट, जो सब ईंटों से ज़्यादा पक्की थी, जो ऊपर लगी होती तो उस कंगूरे की शोभा सौ गुनी कर देती!

(ख) ठोस 'सत्य' सदा 'शिवम्' होता ही है, किंतु वह हमेशा ही 'सुंदरम्' भी हो यह आवश्यक नहीं।

(ग) कुछ तपे-तपाए लोगों को मौन-मूक शहादत का लाल सेहरा पहनना है।

भाषा-अध्ययन

1. इस पाठ में तत्सम शब्दों के साथ-साथ अरबी-फ़ारसी भाषा के भी अनेक शब्द आए हैं। निम्नलिखित शब्दों में से अरबी-फ़ारसी के शब्द चुनिए–

   मुनहसिर, अस्तित्व, इमारत, शहादत, कलश, शोहरत, बेतहाशा, आवरण, रोशनी, बलिदान, शासक, ज़मीन

2. मिश्र वाक्य में मुख्यतः तीन प्रकार के आश्रित उपवाक्य होते हैं – संज्ञा उपवाक्य, विशेषण उपवाक्य और क्रियाविशेषण उपवाक्य।

   निम्नलिखित वाक्यों में से आश्रित उपवाक्य छाँटिए और लिखिए कि वे किस प्रकार के उपवाक्य हैं–

   (क) वह ईंट जो सब ईंटों से ज़्यादा पक्की थी, कंगूरे की शोभा सौ गुनी कर देती।

   (ख) ज़रूरत है ऐसे नौजवानों की, जो अपने को इस काम में चुपचाप खपा दें।

   (ग) हम कठोरता से भागते हैं, भद्देपन से मुख मोड़ते हैं, इसीलिए सत्य से भी भागते हैं।

   (घ) उदय के लिए आतुर हमारा समाज चिल्ला रहा है, हमारी नींव की ईंटें किधर हैं?

योग्यता-विस्तार

भारत-चीन युद्ध के संदर्भ में कवि प्रदीप रचित गीत 'ऐ मेरे वतन के लोगों, ज़रा आँख में भर लो पानी, जो शहीद हुए हैं उनकी ज़रा याद करो कुरबानी' – के भावसाम्य की तुलना प्रस्तुत लेख की भावभूमि से कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

कंगूरा : महल या भवन का सबसे ऊपरी भाग

पुख्तेपन : मज़बूती

पायदारी : टिकाऊपन

मुनहसिर : आश्रित, निर्भर

विलीन : मिटा देना

शहादत : बलिदान

शोहरत : ख्याति, प्रसिद्धि

उत्सर्ग : बलिदान

दधीचि : एक प्रसिद्ध ऋषि, जिन्होंने अपनी हड्डियों का दान इंद्र का वज्र बनाने के लिए कर दिया था।

वृत्रासुर : एक राक्षस

अनुप्राणित : प्रेरित

अभिभूत : आनंद मग्न

कलश : मंदिर का शिखर, कंगूरा

रामविलास शर्मा

रामविलास शर्मा का जन्म उत्तर प्रदेश के उन्नाव ज़िले के एक गाँव में सन 1912 में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा गाँव में पाई। उच्च शिक्षा के लिए वे लखनऊ आ गए। वहाँ से उन्होंने अंग्रेज़ी में एम.ए. किया और विश्वविद्यालय के अंग्रेज़ी-विभाग में प्राध्यापक हो गए। अध्यापन काल में ही उन्होंने पीएच.डी. भी की। कुछ दिनों बाद वे आगरा चले गए और वहाँ के बलवंत राजपूत कॉलेज में अंग्रेज़ी-विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए।

शर्मा जी ने हिंदी साहित्य के क्षेत्र में कवि के रूप में प्रवेश किया। प्रयोगवादी कविता की पहली पुस्तक 'तारसप्तक' के सात कवियों में इनका भी नाम है।

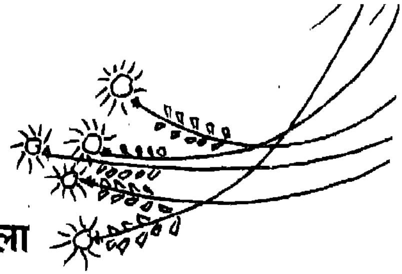
कुछ ही दिनों बाद वे गद्य के क्षेत्र में आ गए। प्रयोगवाद को छोड़ वे प्रगतिशील साहित्य से जुड़ गए। बाद में शर्मा जी प्रगतिशील लेखक संघ के मंत्री हुए और मार्क्सवादी विचारधारा से जुड़े। रामविलास जी की ख्याति आलोचक के रूप में अधिक है। उन्होंने हिंदी समीक्षा को गति प्रदान की और संपूर्ण साहित्य – नए और पुराने को मार्क्सवादी दृष्टिकोण से परखने का कार्य बड़ी निपुणता से किया है। उन्होंने सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक दोनों ही समीक्षा पद्धतियों द्वारा अपने विचारों को पुष्ट करने का उल्लेखनीय प्रयत्न किया है। गोस्वामी तुलसीदास और महाप्राण निराला के काव्य को उन्होंने नए निकष पर परखा है। निराला जी की जीवनी भी उन्होंने लिखी है।

रामविलास शर्मा की प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं –

भारतेंदु और उनका युग, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, प्रेमचंद और उनका युग, निराला की साहित्य साधना (तीन खंड), **भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी** (तीन खंड), **भाषा और समाज, भारत में अंग्रेज़ी राज और मार्क्सवाद, इतिहास दर्शन, भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश।**

शर्मा जी को उनके योगदान के लिए अनेक बड़े-बड़े पुरस्कारों से सम्मानित किया गया किंतु विशाल-हृदय रामविलास जी ने पुरस्कारों की संपूर्ण राशि को भारत में साक्षरता के लिए सरकार को दान कर दिया। जीवन के अंतिम-क्षण तक वे लिखते ही रहे। उनकी मृत्यु दिल्ली में सन 2000 में हुई।

महामानव निराला इस संस्मरण में लेखक ने निराला जी की साहित्य साधना, विलक्षण प्रतिभा, दीन-हीन के प्रति उनकी गहरी संवेदनशीलता, उनके फक्कड़पन, उनके जीवन की व्यथा का वर्णन करते हुए उन्हें 'महामानव' की संज्ञा दी है। ऊपर से कठोर, भीतर से कोमल यह व्यक्तित्व मानव मात्र के प्रति अपने हृदय में कितना प्रेम भरे हुए था, इसका वास्तविक परिचय वही पा सकता है, जिसने उन्हें निकट से देखा हो। निराला जी के साथ लेखक के अंतरंग संबंध के कारण ही प्रस्तुत संस्मरण अत्यंत सजीव एवं रोचक बन सका है।



महामानव निराला

सन 1934 से 1938 तक का समय निराला जी के कवि-जीवन का सबसे अच्छा समय था। उनका कविता-संग्रह 'परिमल' छप चुका था, लेकिन 'गीतिका' के अधिकांश गीत और सर्वश्रेष्ठ कविताएँ 'राम की शक्ति पूजा', 'तुलसीदास', 'सरोज स्मृति' आदि उन्होंने इसी समय लिखीं। गद्य में 'अप्सरा', 'अलका' उपन्यास छप चुके थे, लेकिन 'प्रभावती', 'निरुपमा' उपन्यास और अधिकांश प्रसिद्ध कहानियाँ उन्होंने इसी समय लिखीं। यही बात उनके निबंधों के बारे में भी सही है। उस समय उनकी प्रतिभा अपने पूरे उभार पर थी। उसके पहले जो कुछ था, वह तैयारी थी, बाद को जो कुछ आया, वह सूर्यास्त के बाद का प्रकाश भर था।

निराला जी की एक विशेषता यह थी कि कविता लिखने से पहले वे उसकी भाव-राशि, विषयवस्तु की चर्चा बहुत कम करते थे। कोई भी कविता लिखने से पहले वे उसकी भाव-राशि को कुछ दिन तक अपने मन में सँजोए रखते थे, मानो वह उनके मन में धीरे-धीरे रूप और आकार ग्रहण कर रही हो। दूसरों की कविताओं की चर्चा काफ़ी करते थे, अपने पिछले साहित्यिक जीवन की चर्चा भी करते थे, लेकिन उस समय उनके कवि-हृदय में कौन-सी अस्फुट कविता गूँज रही है, उसका पता लगाना कठिन था। उस समय निराला जी के बारे में लोगों की यह आम धारणा थी कि वे अपने आगे किसी को नहीं गिनते। बात किसी हद तक ठीक भी थी। इसलिए यह और भी आश्चर्य की बात थी कि जिन भावों में उनका मन सबसे ज़्यादा डूबा रहता था और जिन्हें चुपचाप वे छंद और शब्दों का सुंदर रूप देने में लगे होते थे, उनकी वे बात भी न करते थे। लोग उनकी ऊपरी बात, रहन-सहन, चाल-ढाल से इतना आकर्षित होते थे कि वे बाहर न प्रकट होने वाले कवि निराला को भूल जाते थे।

इसी तरह एक दिन अट्ठावन नंबर, नारियल वाली गली, लखनऊ के मकान में कुछ घंटे नीचे के कमरे में बिताने के बाद वे हाथ में एक कागज़ लिए ऊपर आए। तब मैं उन्हीं के साथ रहता था। दो बंद पढ़कर सुनाए और बोले—"तुलसीदास लिखना शुरू कर दिया

है, अभी इतना ही लिखा है।" ये उनकी नई कविता के पहले छंद थे। इससे पहले उन्होंने इसका ज़रा भी आभास न दिया था कि उनका मन तुलसीदास के साथ चित्रकूट में घूम रहा है और नई कविता के भावों में वे इतना डूबे हुए हैं। ऐसे ही एक दिन उन्होंने 'राम की शक्तिपूजा' का पहला बंद सुनाया। तब तक उतना ही लिखा था। पूछा –"कैसा है?" तारीफ़ करने पर प्रसन्नता से बोले– "तो पूरा कर डालें इसे?" मानो ऐसी सुंदर कविता पूरी करने के लिए वे किसी की तारीफ़ की ही राह देख रहे हों।

निराला जी की बहुत-सी कविताएँ आसानी से समझ में नहीं आतीं, इससे कुछ लोगों ने यह अनुमान लगाया था कि शब्दों को ठूँस-ठूँसकर वे किसी तरह कविता पूरी कर देते हैं। वास्तव में कविता लिखने में वे बहुत परिश्रम करते थे, हर पंक्ति, हर शब्द के संगीत और उसकी व्यंजना का ध्यान रखते थे। कविता ही नहीं, कभी-कभी पत्र लिखते हुए वे भाषा के गठन का इसी तरह ध्यान रखते थे। उनके यहाँ कभी-कभी अधलिखे पोस्ट कार्ड देखने को मिलते थे। उनका यही रहस्य था। थोड़ा-सा लिखा, पसंद न आया, दूसरे कार्ड पर लिखने लगे।

कविताएँ पढ़ने और सुनाने में उन्हें बड़ा आनंद आता था। सैकड़ों कविताएँ उन्हें कंठाग्र थीं, अपनी नहीं दूसरों की। सुनाते-सुनाते वे विह्वल हो जाते थे, गला भर आता था और उनका विशाल आकार हवा में पत्ते की तरह काँप उठता था। कविता सुनाते हुए अपनी आँखों से और स्वर से वे उसकी जितनी अच्छी व्याख्या कर देते थे, उतनी अच्छी व्याख्या कोई भी आलोचक न कर सकता था। अपनी कविताएँ सुनाते थे तो स्वर से, उतार-चढ़ाव से और हाथों की मुद्रा में यों भाव प्रकट करते थे कि न समझने वालों को भी थोड़ा-बहुत रस मिल जाता था। कभी-कभी कालिदास या शेक्सपियर की किसी कविता को लेकर वह हफ़्तों उसकी चर्चा करते, दूसरों को उसका मर्म समझाते, कभी-कभी औरों की परीक्षा भी लेते। शेक्सपियर के एक सॉनेट को लेकर वे अंग्रेज़ी के कई अध्यापकों को परेशान कर चुके थे। जब दूसरे व्याख्या न कर पाते तब स्वयं प्रसन्न होकर उसकी व्याख्या करते थे। इसी तरह 'मेघदूत' के कुछ छंदों को लेकर उन्होंने संस्कृत के कुछ आचार्यों की परीक्षा भी ले डाली थी।

निराला ज़ी का घर साहित्य-प्रेमियों का तीर्थराज था। प्रसिद्ध साहित्यकारों से लेकर विद्यार्थियों तक के लिए उनका द्वार खुला रहता था। कविवर सुमित्रानंदन पंत जी जब लखनऊ आते थे, तब उनके यहाँ अवश्य आते थे।

दोनों कवियों का सरस प्रेमालाप सुनकर पता भी न चलता था कि उन्होंने एक-दूसरे की तीखी आलोचना की होगी। एक बार दोपहर को निराला जी ने अपने कवि-मित्र को होटल में खाना खिलाया, फिर वहीं कविता सुनाने को कहा। होटल में और पंत जी की कविता ! निराला जी का आग्रह ! पंत जी ने अपने कोमल स्वर में 'जग के उर्वर आँगन में, बरसो ज्योतिर्मय जीवन...' यह कविता गाकर सुनाई। सभी लोग मुग्ध होकर सुनते रहे। उस छोटे होटल में कुछ देर के लिए खानसामे प्लेट उठाना भूल गए। कविता समाप्त होने पर निराला जी ने विजय-गर्व से मुसकराते हुए कहा–" देखा ! कितनी सुंदर कविता थी", मानो पंत जी ने उन्हीं की कविता सुनाई हो। फिर कोमलकांत पदावली के कवि को सहेजकर वहाँ से चल दिए, मानो ज़्यादा ठहरने से किसी की नज़र लग जाएगी।

एक बार स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद लखनऊ पधारे थे। निराला जी उनसे ऐसे सम्मान के साथ बातें करते थे मानो बड़ा भाई आ गया हो और उन्हें अपने को विशेष संयत रखना पड़ता हो। शाम को एक स्थान पर प्रसाद जी का कविता-पाठ हुआ। लौटते हुए पूछा –" कैसा लगा कविता-पाठ? " उनके स्वर में ऐसी आतुरता थी, मानो हिंदी कविता का भविष्य सुनने वालों की प्रशंसा पर ही निर्भर था और जब प्रसाद जी की मृदुता और सरसता की तारीफ़ सुन ली तो बोले – "हाँ, प्रसाद जी बहुत सुंदर पढ़ते हैं।" और घर लौटने तक वे उसी तरह प्रसन्न बने रहे।

साहित्यकारों का वे सम्मान करते थे। साहित्य-प्रेमियों से जी खोलकर मिलते थे। लेकिन धन और वैभव का सम्मान करना उन्होंने न सीखा था। एक राजा साहब लखनऊ आए थे। उनके सम्मान में गोष्ठी हुई। सभी साहित्यकार एकत्र हुए। राजा साहब के आते ही सब लोग खड़े हुए, केवल निराला जी बैठे रहे। राजा साहब के भूतपूर्व दीवान लोगों का परिचय कराने लगे–"गरीब परवर , ये अमुक साहित्यकार हैं। " जब वे निराला जी तक पहुँचे, तब महाकवि उठकर खड़े हो गए और भूतपूर्व दीवान को 'गरीब परवर' से आगे बढ़ने का मौका न देकर बोल उठे –"हम वो हैं जिनके दादा के दादा के दादा की पालकी आपके दादा के दादा ने उठाई थी।" यानी भूषण की पालकी छत्रसाल ने उठाई थी। भूषण के वंशज हुए निराला जी और छत्रसाल के वंशज हुए राजा साहब।

इसके विपरीत,एक दिन मैंने देखा कि निराला जी के यहाँ एक किसान जैसा लगने वाला आदमी बैठा है और वे उससे प्रेम से अवधी में बातें कर रहे हैं। वह आदमी कुछ अजीब

ढंग से गांधी टोपी लगाए था। चेहरा सूखा-साखा, होंठों पर घनी बेतरतीब मूँछें फैली हुईं। बातचीत में देहाती और देखने में भी देहाती। निराला जी ने बड़े सम्मान से उस व्यक्ति का परिचय कराया – ये हैं हिंदी के बहुत बड़े कवि, लेखक और कहानीकार बलभद्र दीक्षित पढ़ीस। वे अवधी के सुंदर कवि थे। यद्यपि उन्हें उस समय बहुत कम लोग जानते थे, फिर भी निराला जी उनके बारे में ऐसे बातें करते थे, मानो वे भारत-विख्यात महाकवि बन चुके हों। नई पीढ़ी के लेखकों पर तो उनकी विशेष कृपा रहती थी। उन्हें प्रोत्साहन देने में निराला जी की अपनी टेकनीक थी। जिस पर विशेष प्रसन्न हुए उसे कालिका भंडार में रसगुल्ले खिलाने जा पहुँचते। फसल पर आमों और खरबूजों से सत्कार करते थे।

अपनी प्रशंसा सुनकर सभी कवियों को प्रसन्नता होती है, निराला जी को भी होती थी। कभी कोई कविता सुनाकर, यदि श्रोता से उन्होंने इतना ही सुना बहुत अच्छी है, तो अक्सर पूछ बैठते थे – "बहुत धीरे से कहा, क्या बहुत अच्छी नहीं है?"

लेकिन कभी-कभी मुँह देखी कहे जाने पर बिगड़ उठते। एक सज्जन जो कविता कम समझते थे, निराला जी के रूप की प्रशंसा करते हुए बोले–"क्या सुंदर विशाल नेत्र हैं !"

कवि ने तुरंत उत्तर दिया – "जी हाँ, बैल जैसे।"

फिर उन महाशय ने कभी तारीफ़ न की। बहस करने में उन्हें विशेष आनंद आता था। उनसे बहस में बाज़ी मार ले जाना असंभव था। साम, दाम, दंड, भेद सभी अस्त्रों से काम लेते थे। और नहीं तो अपने सहज उदास स्वर में ही विरोधी के तर्कों को डुबा देते थे, या बीच में इतने ज़ोर से हँसते थे कि विरोधी हक्का-बक्का होकर तर्कों को भूल जाता था। बातें करने का ढंग बड़ा ही नाटकीय होता था। कविताओं के विपरीत, अपनी कहानियों की विषयवस्तु की चर्चा लिखने से पहले ही किया करते थे। इसी तरह 'कुल्ली भाट' नाम की पुस्तक में उन्होंने अपनी ससुराल यात्रा का वर्णन किया, उसे नाटकीय ढंग से अक्सर सुनाया करते थे। किस ढंग से उन्होंने धोती बाँधी, कुल्ली ने उन्हें किस तरह स्नेहदृष्टि से देखा, किला देखकर लौटने पर सासु जी कैसे परेशान हुईं– इन सबका अकेले ही अभिनय करके वे रंगमंच के अभिनेताओं को मात कर देते थे। जिस होटल में पंत जी ने कविता सुनाई थी, एक दिन वहाँ खड़े होकर वे किसी कुश्ती का वर्णन कर रहे थे। 'ना...ना' करने पर भी एक श्रोता को पकड़कर उन्होंने ऐसा झोंका दिया कि बेचारा दरवाज़ा न पकड़ लेता, तो सड़क पर ही जा गिरता। हर चीज़ का सक्रिय प्रदर्शन ही उन्हें पसंद था।

उनके लड़के का विवाह था। हज़रतगंज की एक कोठी में आयोजन था। दो साहित्यकारों में वाद-विवाद करते हुए कुछ कहा-सुनी हो गई। कुछ सक्रिय हाथापाई की नौबत आ पहुँची कि निराला जी शोर सुनकर बाहर आ गए। उनकी गंभीर आवाज़, 'क्या बात है' सुनते ही सन्नाटा छा गया, जैसे कोई नटखट बच्चों को शांत करे। उन्होंने सभी महारथियों को यथास्थान बैठा दिया।

उनकी मारपीट की मैंने अनेक कहानियाँ सुनी हैं। यद्यपि दुर्भाग्य से देखी एक भी नहीं। एक बार लखनऊ में एक छोटी-सी गली में कुछ तसवीरें बेचने वालों से झगड़ा हो गया था। अभिमन्यु की तरह घिर जाने पर वे व्यूह भेदकर सकुशल बाहर निकल आए थे। सुना है, एक बार कलकत्ते में और दूसरी बार उन्नाव में उन्होंने कुछ प्रकाशकों की बेईमानी से चिढ़कर उनकी पूजा की थी। साधारणतः वे अपने व्यवहार में सरलता और भोलेपन का ही परिचय देते थे। प्रयाग के एक साहित्यकार ने उन पर व्यक्तिगत आक्षेप करते हुए लेख लिखा था। उसे उन्होंने संदेश भेजा था, "तुम्हारे लिए चमरौधा भिगो रखा है।" जब वे महाशय लखनऊ आए तो महाकवि ने केलों और संतरों से उनका सत्कार किया और तब से वे भी निराला जी के अनन्य भक्त बन गए।

बातचीत में कभी-कभी उनके अपरिचित लोग असम्मानजनक ढंग से बातें करने लगते थे। अक्सर इसका वे बुरा न मानते थे। लखनऊ के विक्टोरिया पार्क में एक दिन शाम को बैठे हुए उन्होंने एक चाटवाले को बुलाया।

"तुमने बुलाया है, क्या लोगे?" कुछ इस ढंग से वह बातें करने लगा।

मैंने उससे शिष्टता से बोलने को कहा तो निराला जी ने टोककर कहा, "यह मुझे अपना साथी समझता है, इसीलिए तुम कहकर बोला। अच्छा लगता है, ऐसे ही बोलना चाहिए।"

यह उनके चरित्र की विशेषता थी कि बड़े-छोटे से एक समान मिलते थे। एक दृश्य अच्छी तरह याद है। जब मैं के.सी. डे लेन, सुंदर बाग में रहता था, वे उधर आया करते थे। एक दिन शाम को उस गली में कुछ बच्चे कबड्डी खेल रहे थे। उन्होंने निराला जी से भी खेल में शामिल होने का आग्रह किया। बिना किसी संकोच के उन्होंने निमंत्रण स्वीकार कर लिया और छोटी-छोटी मछलियों के बीच में मत्स्य के समान गली में तैरने लगे। ऐसे ही कान्यकुब्ज कॉलेज के मैदान में कुछ लड़कों का फ़ुटबाल खेलना देख रहे थे कि एक बार गेंद उनके सामने आ गई। "देखो, किक यों लगाई जाती है", कहकर उन्होंने ज़ोर से

फ़ुटबाल को दूर भेज दिया। लेकिन इस क्रिया से पुराने जूते ने मुँह फैला दिया। कुछ लज्जित होकर बोले, "अब पैर कुछ कमज़ोर हो गया है। पहले देखते मेरा खेल !" फिर जवानी में उनका शरीर कैसा सुडौल बना था, इसका वर्णन करने लगे।

फ़ुटबाल, हाकी, कुश्ती– इन सभी से उन्हें प्रेम था। फ़ुटबाल का मैच होने पर ज़रूर देखने जाते थे। भीड़ में साथ छूट जाता तो मैं एक ओर खड़ा होकर उनकी राह देखने लगता था। सैकड़ों नरमुंडों के ऊपर उठा हुआ उनका शीश दूर से ही देखकर पहचानने में दिक्कत न होती थी। गामा और ध्यानचंद के कौशल से प्रसन्न होकर वे उनकी तुलना रवींद्रनाथ ठाकुर की प्रतिभा से किया करते थे। जिन उँगलियों से वे कविताएँ लिखते थे, लोग उन्हें देखकर अक्सर अजंता की चित्रकला याद करते थे, लेकिन एक बार, अंतिम बार जब उन्होंने मुझसे पंजा लड़ाया तो मुझे उनके यथार्थवादी पक्ष का ज्ञान हुआ। इन्हीं उँगलियों से बड़े कलात्मक ढंग से हथेली पर तंबाकू बनाकर पटापट क्रिया के बाद उसे प्रेम से फाँकते थे। यही एक व्यसन था जो चाहने पर भी वे न छोड़ पाते थे। एक बार अभूतपूर्व संयम से चौबीस घंटे तक तंबाकू को तलाक देकर फिर अधीरता से उसे वरण कर लिया। इन उँगलियों की पाककला पर उन्हें विशेष अभिमान था। कविता की निंदा सुनकर वे भले ही क्षमा कर दें, उनके बनाए हुए खाने में किसी ने आपत्ति की तो उसकी कुशल नहीं। एक बार साहित्यकारों को भोजन के लिए आमंत्रित किया। साहित्यिक विवाद में सालन कुछ जल गया। दोपहर बाद जब लोगों को भोजन मिला तो लोग निराश-से क्षुधा शांत करने लगे।

"कैसा बना है?" निराला जी प्रशंसा सुनने के लिए बार-बार पूछें, लेकिन दिल खोलकर कोई दाद न दे सका। एक सज्जन से न रहा गया। कुछ सहमे-से कुढ़ते हुए बोले, "मालूम होता है, थोड़ा जल गया है।"

निराला जी ने उनकी शंका मिटाते हुए कहा, "कभी खाया न होगा खाना, देखो कितना सोंधा हो गया है।"

अपनी किसी कहानी में उन्होंने लिखा है –"रहे झोंपड़ियों में, ख्वाब देखा महलों का।" महलों का ख्वाब चाहे न देखा हो, व्यवहार से महलों में रहने वालों को मात ज़रूर करते थे। प्रकाशक से दस-दस के पाँच नोट लेकर उनसे पंखे का काम लेते हुए सड़क पर जा रहे थे कि तंगी में दिन बिताने वाले एक साहित्यकार ने उन्हें प्रणाम किया। यद्यपि वे महोदय निराला जी की एकाध कविता की पैरोडी लिखकर उन पर व्यंग्यबाण छोड़ चुके

थे, फिर भी उस समय जब प्रणाम करके नोटों की तरफ़ देखते हुए बोले, "गुरु जी, आजकल बड़े कष्ट में हूँ," तो निराला जी ने नोट उनकी ओर बढ़ा दिए। एक नोट लेकर वे महोदय कृतज्ञ भाव से घर चले गए। नाई से जब-तब बाल बनवाने पर उसे धोती या लिहाफ़ दे देना उनका स्वभाव था। किसी को भूखा-नंगा देखकर जो कुछ पास हुआ, उसे दे देना उनके लिए साधारण बात थी। इसीलिए पैसों के अलावा उन्हें कभी-कभी कपड़े-लत्तों का अभाव भी रहता था। इनके एक परिचित मित्र ने अपने यहाँ कवि-सम्मेलन में बुलाया। खूब स्वागत सम्मान करने की बात भी लिखी। निराला जी ने पत्र पढ़कर कहा, "सम्मान लेकर चाटें ! पेशगी रुपए भेजे नहीं। कपड़े कैसे बनवाएँ?" नतीजा यह कि न मित्र को पेशगी रुपयों के लिए लिखा, न कवि-सम्मेलन में गए।

अच्छी पोशाक पहनने और शरीफ़ों की तरह कहीं जाने के बारे में उनके अपने विचार थे। वैसे अमीनाबाद में मैली तहमद बाँधे और काँधे पर कुरता डाले घूमते रहते, लेकिन कवि-सम्मेलन में जाना हो तो कुरता-धोती सब स्वच्छ होने चाहिए। ऐसे अवसरों पर दाढ़ी बनवाकर चंदन के साबुन से मुँह धोना और बालों में सेंट डालना भी वे न भूलते थे।

पहनने-ओढ़ने की तरह खाने-पीने में भी उनके आचार-व्यवहार से बहुत लोग क्षुब्ध हो जाते थे। वे अपनी किसी भी कमज़ोरी को छिपाते न थे। अपने को साधारण आदमियों में गिनते थे। महामानव बनने और पूजा-वंदना कराने से उन्हें चिढ़ थी। उनके शरीर पर जनेऊ न देखकर एक पंडित जी ने कहा था, "महाराज,आप यज्ञोपवीत नहीं धारण करते?"

निराला जी ने कुछ रोष में कहा, "गुलाम देश में सब शूद्र हैं, यहाँ ब्राह्मण कौन है?" मानो इसीलिए उन्होंने अपने गाँव के साधारण जनों से विशेष नाता जोड़ा था। जहाँ पुराणपंथी उनसे चिढ़ते थे, गरीब किसान और अंत्यज उन पर जान देते थे। चतुरी चमार के लड़के को अपने घर पढ़ाते थे। लखनऊ में अपने होटल के सामने फ़ुटपाथ पर पड़ी रहने वाली एक पगली भिखारिन से उन्हें बहुत सहानुभूति थी। इसी कारण चतुरी और उस पगली पर अपने अपूर्व रेखाचित्र लिख सके थे।

यद्यपि वे सबसे मिलते-जुलते और हँसते-बोलते थे, पर उनका मन एकांत में कहीं विषाद में डूबा रहता था। जीवन में लगातार विरोध होने से उनकी चेतना में कहीं क्षोभ का घुन लग चुका था। रात में सोते समय अक्सर जग जाते थे और घंटों छत पर या बरामदे में टहला करते थे। उस समय उनका मन किस दुःख-सागर में डूबा रहता था, इसे उनके

सिवाय कोई नहीं जानता। अपनी कन्या सरोज की मृत्यु से उन्हें गहरा धक्का लगा था। जिस समय उन्हें समाचार मिला, वे अपनी समस्त वेदना हृदय में दबाने का प्रयास करते हुए कमरे में टहलते रहे। कुछ देर बाद बाहर घूमने चले गए। दुःख के इस हृदय-मंथन से उन्होंने जो अमृत निकाला, वह उनकी अमर कविता 'सरोज स्मृति' थी। एक बार उन्हें डलमऊ में गंगा के किनारे ऐसे ही भावावेश में देखा था। उनकी पत्नी की चिता कहाँ जली थी, उन्हें याद था। कितनी रातों को वे अकेले वहाँ घूमे थे, यह भी उन्हें याद था। प्रथम महायुद्ध के बाद इंफ़्लुएंज़ा से लाशों के कारण गंगा का प्रवाह किस मोड़ पर रुक गया था, यह भी उन्हें याद था। उन्होंने अपना ही दुःख नहीं झेला, दूसरों के दुःख से वे और भी व्यथित हुए। व्यथा ने उन्हें जर्जर कर दिया था। फिर भी अपने से अधिक दूसरों की व्यथा से पीड़ित होकर उन्होंने अपनी अस्वस्थता के दिनों में भी लिखा है– "माँ अपने आलोक निखारो, नर को नरकवास से वारो..."

निराला जी हिंदी-प्रेमियों के हृदय-सम्राट थे। जितने बड़े वे साहित्यकार थे उससे भी बड़े वे मनुष्य थे। छोटों का सम्मान करना उनके इस बड़प्पन की सबसे बड़ी विशेषता थी।

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. किसी कविता को लिखने से पहले निराला उसकी विषयवस्तु की चर्चा बहुत कम करते थे । क्यों?
2. निराला जी के अधलिखे पोस्ट कार्ड उनकी किस विशेषता के परिचायक हैं?
3. दीवान साहब द्वारा राजा साहब से परिचय कराए जाने पर निराला जी ने क्या कहा?
4. निराला जी नई पीढ़ी के रचनाकारों के प्रति अपनी प्रशंसा किस प्रकार दर्शाते थे?
5. कवि-सम्मेलन में जाने के लिए निराला क्या-क्या तैयारी करते थे?
6. चतुरी और पगली भिखारिन पर उनके लिखे रेखाचित्र अपूर्व क्यों बन पड़े हैं?

लिखित

1. निराला जी की सन 1938 के बाद की रचनाओं के बारे में लेखक की टिप्पणी से क्या अभिप्राय निकलता है?
2. कवि निराला की कविता-रचना-प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
3. पंत जी तथा प्रसाद जी से संबंधित प्रसंग साहित्यकारों के प्रति निराला जी की किन भावनाओं को उजागर करते हैं?
4. अपने विरोधियों के प्रति निराला जी की सहृदयता को व्यक्त करने वाले कुछ प्रसंगों का उल्लेख कीजिए।
5. निराला जी साहित्य के अतिरिक्त और किन-किन क्षेत्रों में प्रवीण थे?
6. निराला जी बहस में अपने विरोधियों को हराने के लिए क्या-क्या युक्तियाँ अपनाते थे?
7. पुत्री सरोज की मृत्यु ने निराला जी को किस प्रकार झकझोर दिया था?
8. पाठ के आधार पर स्पष्ट कीजिए कि निराला जी के लिए 'महामानव' का प्रयोग कहाँ तक सार्थक है?
9. विभिन्न भाषाओं के साहित्य में अपनी पैठ से निराला सबको किस प्रकार चमत्कृत कर देते थे?
10. निराला के व्यक्तित्व के निम्नलिखित गुणों का एक-एक उदाहरण लिखिए—
    - **(क)** स्वाभिमान
    - **(ख)** गुणग्राहकता
    - **(ग)** विनोदप्रियता
    - **(घ)** परोपकार
    - **(ङ)** बहुमुखी प्रतिभा

भाषा-अध्ययन

1. पाठ में आए निम्नलिखित समासों में से तत्पुरुष और द्वंद्व समास छाँटिए—
   कपड़े-लत्तों, साहित्य-प्रेमी, कवि-मित्र, रहन-सहन, हृदय-सम्राट,
   कुरता-धोती, हृदय-मंथन, दुःख-सागर, कवि-हृदय, भूखा-नंगा।

2. उदाहरण के अनुसार निम्नलिखित सरल वाक्यों को संयुक्त वाक्यों में रूपांतरित कीजिए–

उदाहरण

वे कभी-कभी कालिदास या शेक्सपियर की किसी कविता को लेकर हफ़्तों उसकी चर्चा करते।

→ कभी-कभी कालिदास या शेक्सपियर की किसी कविता को लेते और हफ़्तों उसकी चर्चा करते।

(क) वे बड़े कलात्मक ढंग से हथेली पर तंबाकू बनाकर पटापट क्रिया के बाद उसे प्रेम से फाँकते।

(ख) एक दिन वे वहाँ खड़े होकर किसी कुश्ती का वर्णन करने लगे।

(ग) उन्होंने इन सबका अकेले ही अभिनय कर रंगमंच के अभिनेताओं को मात कर दिया।

योग्यता-विस्तार

निराला की श्रेष्ठ कविताओं 'राम की शक्ति पूजा', 'तुलसीदास', 'सरोज स्मृति' का संकलन कर कक्षा में सुनाइए और उनके कुछ रोचक अंश कंठस्थ कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

अस्फुट : अप्रकट, अव्यक्त,

सॉनेट : अंग्रेज़ी में चौदह पंक्तियों की कविता का एक छंद विशेष

गरीब परवर : पालन-पोषण करने वाला, गरीबों का पालन करने वाला

बेतरतीब : बिना व्यवस्था के, अव्यवस्थित

व्यूह : युद्धभूमि में सैन्य-रचना

आक्षेप : टीका-टिप्पणी

चमरौधा : देशी ढंग का बना चमड़े का जूता

व्यसन	:	बुरी आदत
वरण	:	अपनाना
मात	:	पराजय
पेशगी	:	अग्रिम राशि
अंत्यज	:	शूद्र
क्षोभ का घुन लगना	:	असंतोष के कारण धीरे-धीरे शक्ति का नष्ट होना

गोपाल चतुर्वेदी

गोपाल चतुर्वेदी का जन्म लखनऊ, उत्तर प्रदेश में सन 1942 में हुआ । प्रारंभिक शिक्षा ग्वालियर और भोपाल में हुई । उच्च शिक्षा के लिए वे इलाहाबाद आए । वहाँ से उन्होंने अंग्रेज़ी साहित्य में एम.ए. किया । इसके बाद वे प्रतियोगी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर केंद्रीय सरकार की नौकरी में चले गए । सन 1965 से 1993 तक भारतीय रेल के उच्च वित्तीय विभाग में कार्यरत रहे। भारत सरकार में अनेक उच्च पदों पर रहने के बाद राज्य-व्यापार निगम के निदेशक के पद से 1998 में सेवानिवृत्त हुए।

उन्होंने किशोरावस्था से ही कविताएँ लिखना शुरू कर दिया था । आगे चलकर वे व्यंग्य-लेखन की ओर मुड़ गए । सन 1980 के बाद के व्यंग्यकारों में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है । हिंदी की सभी महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं में उनके व्यंग्य-लेख छपते रहते हैं । सरिता, इंडिया टुडे, नवभारत टाइम्स और साहित्य अमृत में उनके नियमित स्तंभों में इनकी हास्य-व्यंग्य प्रतिभा के दर्शन होते रहते हैं । उनके व्यंग्य संग्रहों के नाम हैं – **अफ़सर की मौत, दुम की वापसी, खंभों के खेल, फ़ाइल पढ़ि-पढ़ि, आज़ाद भारत में कालू, दाँत में फँसी कुरसी, गंगा से गटर तक, भारत और भैंस** आदि ।

इनकी काव्य पुस्तकें हैं – **कुछ तो हो, धूप की तलाश** ।

इन्हें हिंदी अकादमी, दिल्ली और रेल विभाग के साहित्यिक पुरस्कारों के अतिरिक्त अन्य कई सम्मान भी प्राप्त हुए हैं ।

लेखक ने इस पाठ में भारतीय समाज में हर मौके पर 'खाने-खिलाने' की परंपरा के माध्यम से बड़े ही रोचक ढंग से हमारी उधार लेकर अपनी ज़रूरतों को पूरा करने की बुरी आदत पर करारी चोट की है । यह स्थिति व्यक्ति की ही नहीं, पूरे देश की है । प्रस्तुत व्यंग्य रचना उधार की नीति पर टिके, भ्रष्टाचार के कुचक्र में पिसते और बेईमानों के चंगुल में फँसे हमारे देश की वर्तमान स्थिति पर प्रहार करती है ।

खाने-खिलाने का राष्ट्रीय शौक

खाना-खिलाना हम हिंदुस्तानियों का प्रिय शौक है। जन्म, मृत्यु, शादी, सालगिरह, तीज-त्योहार सब खाने के सुविधाजनक बहाने हैं। दूसरों का खाते-खाते काफ़ी दिनों बाद अपने लल्लू के जन्म पर हमारी भी खिलाने की बारी आई। दोस्त याद दिलाते। रिश्तेदार उलाहने तक आ पहुँचे। घरवाले हमें 'तुरंत दान महाकल्याण' का पाठ पढ़ाने लगे। जब कोई हमें संतान के जन्म की बधाई देता,हम पहले शरमाते। फिर उसे धन्यवाद देते और बात बढ़ने की नौबत आने तक कन्नी काट जाते।

एक दिन नवजात शिशु की माँ ने भी हमें सताने की कमर कस ली। हमने उन्हें हर संभव तरीके से टाला। दुनिया में इतने रुचिकर विषय हैं। क्या मियाँ-बीवी बच्चे की पैदाइश की पार्टी के अलावा किसी और पर चर्चा ही नहीं कर सकते! हमने नई साड़ी का ज़िक्र किया। उन्होंने उत्तर दिया–"पार्टी में पहनूँगी।" हमने उनकी साँवली सहेली की बात छेड़ी। "पार्टी में मिलेगी", उन्होंने हमें चुप किया। हम कौन इस अजूबे से मिलने को उत्सुक थे !

बात जब ज़िद तक आई तब हमने प्रिय जीवन-संगिनी को अपनी आर्थिक विवशता की याद दिलाई। उनपर कोई असर नहीं हुआ। वह एकाएक किसी मध्यमवर्गीय परिवार की साधारण महिला न होकर देश की दरियादिल वित्तमंत्री बन गईं। उन्होंने तत्काल सुझाव पेश किया–"घर का पहला कुल-दीपक है। कुछ तो करना ही पड़ेगा। उधार लेना पड़े तो ले लो।"

हमने मन-ही-मन सोचा कि जब तक पहले कुल-दीपक जन्मोत्सव का उधार चुकेगा, कहीं दूसरा रोशन हो लिया तो क्या होगा? बच्चे के जन्म की खुशी की कीमत क्या हम ज़िंदगी भर उधार चुकाकर चुकाएँगे?

इस उधेड़बुन में हमें अपने शहर के मशहूर धन्ना सेठ हीरामल जी का खयाल आया। वह काला धन कमाने की अपनी क्षमता का सदुपयोग हर उपलब्ध अवसर पर अपनी दान-वीरता का सिक्का जमाने में करते हैं। उन्होंने एक पुराने हनुमान मंदिर का जीर्णोद्धार

किया है। हफ़्ते में एक बार वहाँ वह 'फ़्री' का भोजन कराते हैं। क्यों न हम हीरामल जी से प्रार्थना करें कि जब वह अगली बार मुफ़्त की पंगत बिठाएँ तो हमें भी बता दें। हम अपने शुभचिंतकों को वहीं आमंत्रित कर लेंगे। इधर तो कविता से लेकर क्रिकेट तक सभी 'स्पॉन्सर' होते हैं। संसार में एक और चौबे के प्रवेश का प्रायोजित समारोह क्यों नहीं हो सकता? हम भोजस्थल पर 'सेठ हीरामल जी के सौजन्य से' की 'होर्डिंग' लगाने को तैयार हैं। इस 'थ्री-इन-वन'से हमारी अर्द्धांगिनी का अरमान, सेठजी का दान और अपना निजी-कल्याण तीनों पूरे हो जाएँगे।

आज के बाज़ारू युग की परंपरा के अनुसार सवाल यह था कि इस अनूठे और मौलिक 'आइडिया' को कैसे सेठ हीरामल को बेचा जाए। इस तरह के बड़े लोग या तो पूजा में रहते हैं या बोर्ड मीटिंग अथवा किसी स्वामी के दरबार में। जनता उन्हें या तो कभी जेल जाते निहारती है या अखबार की सुर्खियों में वतन के कर्णधारों के साथ उनकी शक्ल नज़र आती है। हमने उन्हें छह-सात बार दूरभाष पर पकड़ने का प्रयास किया और हर बार उनके निजी सहायकों ने हमें नया-नया धता बताया। फिर भी अपनी विशिष्टता पर हमारा विश्वास बरकरार रहा। हीरामल जी क्या जानें हमारे जैसे नायाब इनसान को! एक बार अपने संपर्क में तो आएँ। उसके बाद तो हमारे मुरीद बन ही जाएँगे।

इस सारी कसरत से हमें एक एहसास हुआ। टेलीफ़ोन डाइरेक्टरी बड़े फ़ायदे की चीज़ है। इसमें ऐसे-ऐसे नंबर होते हैं जो हवाला की मशहूर डायरी-सा सिर्फ़ सच का संकेत-भर देते हैं। हमें एक श्यामलाल जी का नंबर मिला। वह हीरामल जी की कंपनी के महाप्रबंधक थे। हमने श्यामलाल जी का नंबर घुमाया, तो श्मशान से उत्तर आया। बाद में पता लगा कि श्यामलाल जी दो साल पहले स्वर्ग सिधार चुके हैं।

अपने असफल प्रयासों से हम निराश नहीं हुए। हीरामल से मुलाकात की कोशिश में लगन से लग लिए। दिमाग पर ज़ोर देकर हमें एक तरकीब सूझी। क्यों न हीरामलजी के मंदिर के पुजारी को पकड़ें। जब सेठ जी का वहाँ प्रादुर्भाव हो तो उनसे रू-ब-रू मुलाकात कर लें।

हम शहर से दूर उस मंदिर में पहुँचे। हनुमान जी के साथ हमने पुजारी को भी पूजा। वह नवयुवक प्रसन्न हुआ। उसने हमें चंदन का टीका लगाया आशीर्वाद दिया। मंदिर सुनसान था। हमने दोस्ती का हाथ बढ़ाया–"बड़ा सुंदर स्थान है। एकांत में प्रभु की साधना का आनंद ही

अलग है।" उससे जवाब आया–"एकाध दिन के लिए तो ठीक है। न रेडियो है, न टी.वी.। हम तो बोर हो चुके हैं।"

"कोई पुजारी पूजा से कैसे बोर होगा !" हमने ताज्जुब जताया।

"कैसी पूजा? कौन-सा पुजारी? हमें तो इस सेठ ने फँसा दिया है।"

"वह कैसे?" हमने जानना चाहा।

"हमारी मंत्री जी ने सिफ़ारिश की थी। इसने प्रबंधक की जगह पुजारी बना दिया। कभी-कभी तो इस माहौल में मन करता है कि वाकई संन्यास ले लें।"

"बेकारी भुगतने से तो पुजारी होना बेहतर है। वेतन तो मिल ही जाता होगा।" हमने उसे दिलासा दिया।

"कैसा वेतन ! रहने को कोठरी और सवारी को साइकिल दे रखी है सेठ ने। कहता है कि चढ़ावे का कैश ले लो, तनख्वाह की दरकार ही क्या है।"

"यह तो नाइनसाफ़ी है," हमने हमदर्दी जताई।

उसने सेठ का चारित्रिक खाका खींचा–"बस नाम का ही हीरा है यह सेठ। ऐसा सूम हमने तो आज तक नहीं देखा है। उसका एक मैनेजर बता रहा था कि हीरामल ने करोड़ों दबा रखा है। दुनिया-भर के हीरे हैं उसके पास। जाने कहाँ छुपे हैं। पहले हम सोचते थे कि इसकी तोंद की तिजोरी में होंगे। बाद में पता लगा कि उसके पेट के तीन-तीन ऑपरेशन डॉक्टरों ने भी शायद इसी चक्कर में कर डाले। पर एक भी हीरा हाथ नहीं लगा।"

हमने पुजारी को अपना प्लान बताया।

"हीरामल से मिलना है तो कल ही आ जाओ। प्रभु को घूस देने वह पधार रहा है। आसपास के भूखे भी आएँगे।" पुजारी ने हमें सूचना दी। साथ ही यह चेतावनी भी कि हीरामल सिर्फ़ आला अफ़सर या नेता से सीधे मुँह बात करता है। अब अफ़सर बन आना तो मुश्किल है। सेठ से संवाद करने के लिए नेता का स्वाँग आसान है।

हम अपने शुभचिंतक के निर्देश के अनुसार खादी धारण कर बगुला भगत बने और हीरालाल के मंदिर-दरबार में हाज़िर हो गए। वह मंदिर के एक चबूतरे पर एक ऊँची गद्देदार कुरसी पर विराजमान थे। नीचे उनके परमार्थ के सबूतों की दो कतारें हलुआ-सब्ज़ी-पूड़ी पर ऐसे टूट रही थीं जैसे पुलिस बेगुनाहों पर। हमारी ओर उन्होंने उड़ती नज़र डाली और हाथ

से खाने की ओर इशारा किया। हम देखा-अनदेखा कर चबूतरे के नीचे तक पहुँचे। "प्रणाम, हीरामल जी!" हमने अपनी उपस्थिति जताई।

"खाइए,खाइए,आप भी खाइए, नेता जी।" उन्होंने आग्रह किया। हमने इनकार में सिर हिलाया।

"सबके साथ खाने में परहेज़ हो तो आपका अकेले में इंतज़ाम करवा दें?" उन्होंने फिर निमंत्रण दिया।

"हम खाने नहीं, आपसे मिलने आए हैं।" हमने अपनी मंशा ज़ाहिर की।

"आप किस दल और किस स्तर के लीडर हैं?" उन्होंने जानना चाहा।

हमने मोहल्ले के नेता के रूप में अपना परिचय दिया। दल की बात हम गोल कर गए। "मोहल्ले के नेता," हीरामल जी बुदबुदाए। फिर सोचने की मुद्रा में मौन रहकर उनका बोल फूटा—"सेवा बताइए। मुझे मीटिंग में शहर जाना है।"

हमने उन्हें नवजात चौबे के जन्मोत्सव की पार्टी का 'प्रपोज़ल' दिया।

"देखिए,चंदा,डोनेशन,उधार हम सब देने को तैयार हैं। आप नेता लोग देशसेवक हैं। आपकी सेवा हमारा कर्तव्य है। पर आप हमारे लिए क्या करेंगे?"

"हम आपको चौबे जन्म-समारोह का 'स्पॉन्सर' बनाएँगे। आप चाहेंगे, तो आपकी आरती उतारेंगे। बड़े आशीर्वाद देंगे। छोटे आपके गुण गाएँगे।"

वह विरक्ति के भाव से हमें देखते रहे। "आपके यहाँ सिर्फ़ एक बच्चा पैदा हुआ है। कोई क्रिकेट का विश्व कप तो हो नहीं रहा जो हम 'स्पॉन्सर' करें।" वह बेरुखी से बोले।

मरता क्या न करता। हम फिर गिड़गिड़ाए —"तो कुछ हज़ार चंदा समझकर ही दे दीजिए। नहीं तो अगली बार मंदिर के मुफ़्त भोज में हमें अपने मेहमानों को लाने का अवसर देने की कृपा कीजिए।"

वह उठे और बिना हमारी प्रार्थना की ओर ध्यान दिए चलने लगे। हम उनके पीछे-पीछे हाथ जोड़े दौड़े।

"हमारा फ़लसफ़ा इस हाथ ले, उस हाथ दे का है। हम मोहल्ला-छाप नेताओं से डील नहीं करते हैं।" उन्होंने हमें चलता किया।

अपनी इस नाकामयाब भागदौड़ से भी एक उपलब्धि हुई। हलुआ संस्कृति की असलियत अपने पल्ले पड़ गई। पैसे वालों से पैसे निकालना या तो धर्म के नाम पर संभव है या सत्ता के सहारे। उनका हलुआ-पूड़ी या तो नंगे-भूखों के लिए है अथवा कुरसीधारी समृद्ध वर्ग की खातिर। अर्थात उनका हलुआ-हमाम सिर्फ़ खालिस और असली नंगों के लिए है। उन्हें खिलाने से कतई एतराज़ नहीं है। वह दिल खोलकर खिलाते हैं, पर सिर्फ़ नाम या काम की खातिर।

उनकी खिलाने की योजना में हमारे जैसे चक्की के दो पाटों के बीच के अर्थात मध्यमवर्गीय लोगों के लिए कोई जगह नहीं है। हमें मौके-बेमौके खिलाकर अपनी हैसियत दिखानी है और खाकर अपना सामाजिक दायित्व निभाना है। हमारा खाना-खिलाना विवशता का एक ऐसा दुश्चक्र है जो सिर्फ़ उधार से चलता है।

हमारे मन में संतोष भी हुआ। हम उधार लेकर समारोह करेंगे तो देश से जुड़ेंगे। हमारा प्यारा वतन भी उधार लेकर चमचमाती कारों, हवाई जहाज़ों और गगनचुंबी इमारतों में इठला रहा है। अपन भी घर फूँककर तमाशा देखें तो हर्ज क्या है !

आप विश्वास करें, न करें, हम इधर कतई दार्शनिक हो गए हैं। साँस उधार की है। ज़िंदगी उधार की है। अगर हम उत्सव-समारोह भी उधार से करें तो फ़र्क क्या पड़ता है! अपना है ही क्या ! हलुआ हो अथवा हवाला। 'फ़्री' का खाना उन्हीं के लिए है जिनके पास खाने की इफ़रात है। पैसा पैसे को खींचता है और हलुआ हलुए को।

जाने क्यों हमारे देसी अखबार और नासमझ लोग खाने-खिलाने के इस 'फ़्री' आयोजन के बारे में इतना हल्ला मचा रहे हैं। पचास-साठ करोड़ के छोटे से घोटाले से क्या हमारे महान राष्ट्र का चरित्र निर्धारित हो सकता है ! औसतन प्रति व्यक्ति चवन्नी-अठन्नी भी तो नहीं पड़ती। हमें तो यह चवन्नी- मानसिकता का नमूना लगता है। यही वजह है कि हम आज की उधार राष्ट्रीय अर्थनीति के कायल हैं। इसने हर भारतीय को पंद्रह-बीस हज़ार के कर्ज़ का भागीदार बनाकर उसे इज़्ज़त बख्शी है। उसका रुतबा बढ़ाया है। हम संसार के सामने सीना फुलाकर और सिर उठाकर गर्व से कह सकते हैं कि हम 'हिंदुस्तानी' हैं। कौन हमें गरीब कहता है! हमारी बाज़ारू साख हमारी अमीरी का सबूत है। सिर्फ़ हमपर ही नहीं, हमारी आनेवाली पीढ़ियों पर भी हज़ारों का कर्ज़ है, जिसके कम होने की संभावना नहीं, केवल बढ़ने की गुंजाइश है।

खाने-खिलाने का हमारा राष्ट्रीय शौक हमारी उधार की राष्ट्रीय महानता को लघुता में कतई नहीं बदल सकता। आज के युग में हज़ारों के आगे चवन्नी की बिसात ही क्या है? चाय तो चाय है, एक गिलास ठंडा पानी तक चवन्नी में हासिल नहीं है। जाने कैसे सिरफिरे लोग हैं, जो इसी चवन्नी के लिए हवाला-हवाला, घोटाला-घोटाला की हाँक दे रहे हैं! सच है। वतन की तरक्की इसीलिए नहीं हो पा रही है। न लोग खुद बड़ा सोचते हैं, न बड़ा करते हैं, न दूसरों को करने देते हैं। चवन्नी पर इतना शोर है। कोई एक रुपए की भी कैसे सोचे ! हज़ारों-लाखों की तो बात ही दीगर है।

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. लेखक अपने पुत्र के जन्म पर बधाई देने वालों को धन्यवाद देने के बाद बात को आगे क्यों नहीं बढ़ने देता था?
2. लेखक के किस-किस सुझाव को उसकी पत्नी ने पार्टी के प्रसंग में बदल दिया?
3. पत्नी द्वारा उधार लेने के सुझाव पर लेखक क्या सोचने लगा था?
4. लेखक अपनी किस युक्ति को 'थ्री-इन-वन' कहता है और क्यों?
5. उसे मंदिर में सेठ हीरामल के परमार्थ के क्या सबूत दिखाई दिए?
6. उसने सेठ हीरामल के आगे क्या 'प्रपोज़ल' रखा और हीरामल ने उस पर क्या प्रतिक्रिया की?
7. लेखक को हीरामल से मिलने के लिए क्या स्वाँग भरना पड़ा और क्यों?

लिखित

1. लेखक ने सेठ हीरामल से मिलने के लिए क्या-क्या प्रयास किए? उनके प्रयास असफल कैसे हो गए?

2. लेखक को पुजारी के साथ हमदर्दी क्यों जतानी पड़ी?
3. पुजारी ने सेठ हीरामल की किन-किन चारित्रिक विशेषताओं का बखान किया?
4. हीरामल द्वारा अपने अनुरोध को अस्वीकार करने को भी लेखक एक उपलब्धि क्यों मानता है?
5. लेखक ने चवन्नी-मानसिकता का नमूना किसे कहा है और क्यों?
6. 'उनका हलुआ-हमाम सिर्फ़ खालिस और असली नंगों के लिए है।' इस वाक्य में 'असली नंगे' किन्हें कहा गया है और क्यों?
7. आज की उधार राष्ट्रनीति से क्या तात्पर्य है? उधार लेकर समारोह करने को उचित ठहराने के लिए लेखक क्या-क्या तर्क देता है?
8. इस पाठ में एक ओर मध्यवर्गीय मानसिकता को उभारा गया है, तो दूसरी ओर आज की भ्रष्ट राजनीति पर करारी चोट की गई है। इस कथन पर सोदाहरण टिप्पणी कीजिए।
9. **आशय स्पष्ट कीजिए**

   (क) इसमें ऐसे-ऐसे नंबर होते हैं जो हवाला की मशहूर डायरी-सा सिर्फ़ सच का संकेत-भर देते हैं।

   (ख) हमारा खाना-खिलाना विवशता का एक ऐसा दुश्चक्र है, जो सिर्फ़ उधार से चलता है।

   (ग) हमारी बाज़ारू साख हमारी अमीरी का सबूत है।

भाषा-अध्ययन

1. हिंदी में 'अ', 'अन्' और 'ना' उपसर्ग लगने से मूल शब्द का अर्थ विलोमार्थी अथवा विपरीतार्थी हो जाता है, जैसे–

   अ + कुशल = अकुशल

   अन् + अधिकार = अनधिकार

   ना + कामयाब = नाकामयाब

   उपर्युक्त उपसर्गों की सहायता से दो-दो शब्द बनाइए।

2. उदाहरण के अनुसार निम्नलिखित वाक्यों में संज्ञा पदबंध छाँटकर लिखिए–

उदाहरण : इस उधेड़बुन में हमें अपने शहर के मशहूर धन्ना सेठ हीरामल जी का खयाल आया।

→संज्ञा पदबंध : अपने शहर के मशहूर धन्ना सेठ हीरामल जी

(क) आज के बाज़ार युग की परंपरा के अनुसार सवाल यह था कि इस अनूठे और मौलिक 'आइडिया' को कैसे सेठ हीरामल को बेचा जाए।

(ख) वह मंदिर के चबूतरे पर एक ऊँची गद्देदार कुरसी पर विराजमान थे।

(ग) हमने उन्हें नवजात चौबे के जन्मोत्सव की पार्टी का 'प्रपोज़ल' दिया।

योग्यता-विस्तार

1. स्नेह, सौहार्द, सामाजिक व्यवहार के प्रतीक प्रीतिभोज जैसे रीति-रिवाज आज कुरीतियों में बदलने लगे हैं। देखी-सुनी और पढ़ी घटनाओं को आधार बनाते हुए इस विषय पर कक्षा में परिचर्चा कीजिए।
2. 'मैंने अपना जन्मदिवस कैसे मनाया' विषय पर एक निबंध लिखिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

कन्नी काटना : आँख बचाकर निकल जाना, कतराना

कमर कसना : पक्का इरादा करना

दरियादिल : उदार

ताल्लुक : संबंध

सिक्का जमाना : रोब-दाब, महत्त्व स्थापित करना

जीर्णोद्धार : पुरानी टूटी-फूटी चीज़ की मरम्मत

पंगत : भोज में एक साथ बैठकर खाने वालों की पंक्ति

स्पॉन्सर : प्रायोजक (प्रायोजित करने वाला)

होर्डिंग	:	सूचना-पट्ट
नुक्स	:	कमी, खोट
खैराती	:	दान में प्राप्त
कर्णधार	:	देख-रेख करने वाले, नेता
धता बताना	:	टाल देना
नायाब	:	अप्राप्य, दुर्लभ, जिसका मिलना संभव न हो
मुरीद	:	शिष्य, प्रशंसक
प्रादुर्भाव	:	आगमन
रू-ब-रू	:	आमने-सामने
सूम	:	कंजूस
स्वाँग	:	अभिनय
मंशा	:	इरादा
फ़लसफ़ा	:	सिद्धांत
दुष्चक्र	:	षड्यंत्र, साज़िश
दीगर	:	अलग, भिन्न

भीष्म साहनी

भीष्म साहनी का जन्म पाकिस्तान के रावलपिंडी नामक शहर में सन 1915 में हुआ था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा कस्बे के स्कूल में हुई। उच्च शिक्षा के लिए ये लाहौर गए। वहाँ से अंग्रेज़ी में एम.ए. किया। कालांतर में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। आजीविका के लिए अध्यापन कार्य अपनाया। बहुत समय तक यह दिल्ली के ज़ाकिर हुसैन कॉलेज में अंग्रेज़ी पढ़ाते रहे।

भीष्म के बड़े भाई बलराज साहनी थे जो प्रगतिशील नाटकों और फ़िल्मों से जुड़े थे। बचपन से ही भीष्म पर बड़े भाई का प्रभाव था। दोनों भाई मिलकर घर पर खेल-खेल में नाटकों का मंचन किया करते थे। बड़े होने पर दोनों भाई शिक्षक बन गए, किंतु उनका मन नाटकों से दूर नहीं हुआ। बलराज तो पूर्णकालिक रूप से फ़िल्मों की दुनिया में बस गए और भीष्म शौकिया रूप से नाटक और दूरदर्शन के कार्यक्रमों में भाग लेते रहे।

भीष्म साहनी किशोरावस्था से ही साहित्य रचना में लग गए थे। उन्होंने कहानी, उपन्यास और नाटकों का लेखन किया। उनके प्रमुख कहानी-संग्रह हैं– **भाग्य-रेखा, भटकती राह, पहला पाठ, पटरियाँ, वाड्.चू** और **झरोखे**।

उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं – **तमस, कड़ियाँ** और **वसंती**। इन पर दूरदर्शन धारावाहिक भी बन चुके हैं। 'तमस' पर उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार मिल चुका है। सन 2002 में उन्हें अकादमी की महत्तर फ़ेलोशिप भी मिली है।

राजस्थान के एक गाँव की तीर्थ यात्रा में लेखक ने 'तिलोनिया' गाँव की यात्रा का वर्णन रिपोर्ताज शैली में प्रस्तुत किया है। इस लेख में राजस्थान के तिलोनिया गाँव में स्थित एक स्वावलंबी केंद्र के विषय में विस्तृत जानकारी दी गई है। यह केंद्र स्थानीय लोगों को पारंपरिक शिल्प तथा अन्य उपलब्ध साधनों के प्रयोग द्वारा आत्मनिर्भर बनना सिखाता है। यहाँ वर्षा के जल के संग्रहण और संरक्षण की अद्भुत व्यवस्था की गई है । वर्षा के संचित जल से 'सौर ऊर्जा' द्वारा बिजली भी प्राप्त कर ली जाती है । रात्रि पाठशालाओं के माध्यम से कार्यरत लोगों को शिक्षित किया जा रहा है । इस लेख से यह प्रेरणा मिलती है कि इस प्रकार के प्रयत्नों से संपूर्ण भारत गांधी के सपनों का भारत बन सकता है ।

राजस्थान के एक गाँव की तीर्थ यात्रा

मुझे मालूम नहीं था कि भारत में 'तिलोनिया' नाम की भी कोई जगह है जहाँ हमारे देश के समसामयिक इतिहास का एक विस्मयकारी पन्ना लिखा जा रहा है। किसी बड़े शहर में रहते हुए हम केवल अखबार द्वारा ही देश-विदेश के बारे में अपनी जानकारी हासिल करते हैं। और आजकल तो इस जानकारी से मन अशांत और क्षुब्ध ही होता है। दिल्ली में से निकलने का एक कारण तो इस अखबारी माहौल से निकलने की तीव्र इच्छा थी। यों, बला की गरमी पड़ रही थी, यहाँ तक कि जिस किसी से कहो कि हम लोग राजस्थान जा रहे हैं तो झट से यही सुनने को मिलता, 'पगला गए हो क्या? इतनी गरमी में राजस्थान जाओगे ?'

उस वक्त तक तिलोनिया के बारे में मुझे इतनी ही जानकारी थी कि वहाँ पर एक स्वावलंबी विकास केंद्र चल रहा है,जिसे स्थानीय ग्रामवासी, स्त्री-पुरुष मिलजुलकर चला रहे हैं। बस, इतना ही और मैं वहाँ अपने किसी प्रयोजन से भी नहीं जा रहा था। मैं अपने वास्तुकार दामाद के साथ जिन्हें वहाँ अपना कोई काम था, मात्र एक साथी के नाते जा रहा था।

मुंबई को जाने वाली जरनैली सड़क को छोड़कर हमारी जीप एक तंग राजस्थानी सड़क पर आ गई थी। मतलब साफ़, समतल सड़क को छोड़कर ऊबड़-खाबड़ सड़क पर आ गई थी। पर यहाँ भी दूर-दूर तक कुछ दिखाई नहीं देता था, केवल सपाट मैदान, कँटीली झाड़ियों के झुरमुट और दोपहर का बोझिल वातावरण। लगता था, हवा में पिघला काँच घुला है। फिर सहसा ही हमारी जीप ने एक मोड़ काटा और हम तिलोनिया की छोटी-सी बस्ती में थे।

बस्ती क्या थी, कुछ पुराने और कुछ नए छोटे-छोटे घरों का झुरमुट थी। पुराने घर तो अंग्रेज़ों के ज़माने के जान पड़ते थे। बाद में पता चला था कि वहाँ कभी तपेदिक के रोगियों का स्वास्थ्य गृह रहा था। शेष घर नए-नए बने जान पड़ते थे, चारों ओर चुप्पी थी, और दोपहर की अलसाहट। धीरे-धीरे तिलोनिया के राज़ खुलने लगे। पहली जानकारी तो भोजन पर बैठते समय ही हो गई जब एक सज्जन मेरे हाथ धुला रहे थे।

"जहाँ पर हम खड़े हैं, उसके नीचे एक तालाब है। हम लोग तालाब की छत पर खड़े हैं।" मैं अभी दाएँ-बाएँ, उस छिपे हुए तालाब का जायज़ा ले ही रहा था जब वह कहने लगे, "इस ताल में बारिश का पानी इकट्ठा होता रहता है। बरसात के दिनों में छतों पर से गिरने वाला जल सीधा इस ताल में चला जाता है। ऐसे ही बहुत से ताल हमने जगह-जगह बना रखे हैं।"

इससे पहले कि मैं उनसे कुछ पूछूँ, उन्होंने मेरे चेहरे के भाव से ही मेरे सवाल को समझ लिया होगा। कहने लगे, "इस बारिश के पानी को हम साफ़ कर लेते हैं । उसे पीते हैं, उस पानी से अपनी खेती-बाड़ी करते हैं। राजस्थान की धरती तो जल के लिए तरसती है ना। अब तो ऐसे ही एक सौ दस ताल हमने अपने इस इलाके में जगह-जगह बना रखे हैं। हमारे स्कूलों और सामुदायिक केंद्रों में जल-संरक्षण व संग्रहण की व्यवस्था कर दी गई है। यहाँ तिलोनिया में जल के संरक्षण का प्रबंध बहुत पहले कर लिया गया था।"

"इस संस्थान की स्थापना कब हुई थी?" मैंने पूछा। "1972 में" वह बोले, फिर कुछ याद करते हुए से कहने लगे, "यह वह ज़माना था जब जगह-जगह अनेक युवाजन अपनी पहलकदमी पर कुछ नया कर दिखाना चाहते थे जो देश के विकास के लिए हितकर हो। अनेक स्थानों पर, अपने-अपने विचारानुसार अनेक प्रयोग किए गए। उनमें से एक यह भी था। ऐसी मंडलियाँ, मुख्यतः गाँव को ही केंद्र में रखकर अपने प्रयोग करना चाहती थीं और अक्सर लोग-बाग उनकी खिल्ली उड़ाया करते थे कि पिछड़े हुए गाँवों में जाकर क्या करोगे? यह प्रयोग निश्चय ही सफल हुआ।"

वह कह रहे थे, "इसका गठन किया था, बंकर राय नाम के एक सुशिक्षित व्यक्ति ने। वे अपने साथ एक टाइपिस्ट और एक फ़ोटोग्राफ़र को लेकर यहाँ चले आए थे। यही उनकी मंडली थी। यह 1972 की बात है। सरकार से उन्होंने लीज़ पर 45 एकड़ सरकारी ज़मीन ली, साथ में तपेदिक के मरीज़ों के लिए किसी ज़माने में बनाए गए सेनेटोरियम के 21 छोटे-मोटे मकान थे। ज़मीन को एक रुपया महीना के हिसाब से लीज़ पर लिया और अपने संस्थान की स्थापना कर दी। संस्थान का नाम था– सामाजिक कार्य तथा शोध संस्थान (एस.डब्ल्यू.आर.सी.)। उन दिनों तिलोनिया गाँव की आबादी दो हज़ार की रही होगी।"

मेरे मन में संशय उठने लगे थे। आज के ज़माने में वैज्ञानिक उपकरणों और जानकारी के बल पर ही तरक्की की जा सकती है। उससे कटकर या उसकी अवहेलना करते हुए नहीं की जा सकती। एक पिछड़े हुए गाँव के लोग अपनी समस्याएँ स्वयं सुलझा लेंगे, यह नामुमकिन था। पर वह सज्जन कहे जा रहे थे–"हमारे गाँव आज नहीं बसे हैं। इन गाँवों में शताब्दियों से हमारे पूर्वज रहते आ रहे हैं। पहले ज़माने में भी हमारे लोग अपनी सूझ और पहलकदमी के बल पर ही अपनी दिक्कतें सुलझाते रहे होंगे। ज़रूरत इस बात की है कि हम शताब्दियों की इस परंपरागत जानकारी को नष्ट नहीं होने दें। उसका उपयोग करें।" फिर मुझे समझाते हुए बोले – "हम बाहर की जानकारी से भी पूरा-पूरा लाभ उठाते हैं, पर हम मूलतः स्वावलंबी बनना चाहते हैं, स्वावलंबी, आत्मनिर्भर।"

वह सज्जन अपने प्रयासों की चर्चा कर रहे थे और मुझे बार-बार गांधी जी के कथन याद आ रहे थे। मैंने गांधी जी का ज़िक्र किया तो वह बड़े उत्साह से बोले – "आपने ठीक ही कहा है। यह संस्थान गांधी जी की मान्यताओं के अनुरूप ही चलता है – सादापन, कर्मठता, अनुशासन, सहभागिता । यहाँ सभी निर्णय मिल बैठकर किए जाते हैं। आत्मनिर्भरता...।"

"आत्मनिर्भरता से क्या मतलब?" "आत्मनिर्भरता से मतलब कि ग्रामवासियों की छिपी क्षमताओं को काम में लाया जाए। और गांधी जी के अनुसार, ग्रामवासी अपनी अधिकांश बुनियादी ज़रूरत की वस्तुओं का उत्पादन स्वयं करें...।" मैं बड़े ध्यान से सुन रहा था। वह कह रहे थे– "कोई भी काम हाथ में लेने से पहले सभी ग्रामवासियों का प्रतिनिधित्व करने वाली बैठक बुलाई जाती है। ग्रामवासियों की अपनी समिति चुनी जाती है, जिसमें गरीब लोगों तथा महिलाओं को प्राथमिकता दी जाती है, विशेष रूप से दलित तथा गरीब महिलाओं को। हमारे संस्थान का मूल आशय गाँव की दरिद्र जनता की मूलभूत ज़रूरतों को पूरा करने के लिए परंपरागत जानकारी और व्यावहारिक अनुभव के आधार पर, साझे प्रयासों द्वारा, गाँव की अर्थव्यवस्था का विकास करना है। हमारे बहुत से काम बाहर के विशेषज्ञों और स्थानीय ग्रामवासियों के साझे प्रयास से हुए। पर उनके निर्णय और संचालन में आधारभूत भूमिका स्थानीय ग्रामवासियों की ही रही है...।"

हाथ-मुँह धोकर हम लोग भोजन कक्ष की ओर बढ़ गए। बरामदे में ही एक ओर पानी के बहुत से नल लगे थे। "यह किस काम के लिए?" मैंने पूछा तो वह सज्जन हँस दिए। "भोजन कक्ष में बैठने वाले लोग, भोजन करने के बाद अपने बरतन यहीं पर साफ़ करते हैं। यहाँ नौकर-चाकर

नहीं हैं।" भोजन कक्ष में अनेक ग्रामवासी पुरुष-स्त्रियाँ बैठे भोजन कर रहे थे। सारा प्रबंध प्रथानुसार फ़र्शी था। बड़े आनंद से भोजन किया। पास बैठे लोगों की भाषा तो समझ में नहीं आती थी, पर उनके लहजों से बड़ा स्निग्ध-सा अपनापन झलकता था।

भोजन के बाद हमने भी बरतन धोए और ठिकाने पर रखे। पानी के ताल के पास हम फिर से खड़े थे जब मैंने पूछा–"ताल के जल का उपयोग क्या आप और भी किसी काम के लिए करते हैं?" वह झट से बोले–"इससे बिजली पैदा करते हैं। इसी जल से हम बिजली निकालकर घरों को रोशनी पहुँचाते हैं।" मैं चौंका। बारिश के पानी को साफ़ करके पिया जा सकता है, खेती-बाड़ी के काम में भी लाया जा सकता है, पर बिजली? "वह कैसे?" "सूर्य की ऊर्जा से।" अब की बार मेरे लिए यकीन करना कठिन हो रहा था। पर सहसा ही मुझे याद आया कि भोजन करते समय, छत पर से लटकता बिजली का पंखा चल रहा था।

वह कह रहे थे–"सूर्य की ऊर्जा से मिलने वाली बिजली चकाचौंध तो नहीं करती, पर घरों में रोशनी पहुँचा जाती है। पंखे भी चल जाते हैं। किसी सीमा तक टेलीविजन के परदे पर चलचित्र भी देखने को मिल जाते हैं। हमारी ज़रूरतें किसी हद तक पूरी हो जाती हैं। इसी मूल लक्ष्य से प्रेरित होकर इस संस्थान की स्थापना हुई थी कि हम स्वावलंबी हों।"

फिर बड़े उत्साह से कहने लगे – "तिलोनिया गाँव में स्थित लगभग साठ हज़ार वर्ग फ़ुट पर फैला हुआ इस संस्था का नया परिसर पूरी तरह सौर-ऊर्जा से चालित है। काफ़ी गहराई से पानी खींचने के पंप तथा अनेक कंप्यूटरों की व्यवस्था सौर-ऊर्जा द्वारा ही की जाती है...।" मैं मन-ही-मन फिर से चौंका ! क्या इस जगह कंप्यूटर भी पहुँच गए हैं ? पर वह बराबर बताए जा रहे थे, "और उनकी देख-रेख और व्यवस्था मुख्यतः हमारे ग्रामीण सदस्य ही करते हैं। उनमें से अनेक इस काम में प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हैं। अब हमारी रात्रि पाठशालाओं में सौर-ऊर्जा से ही रोशनी मिलती है।"

"रात्रि पाठशालाओं से क्या मतलब ? क्या यहाँ रात के वक्त पाठशालाओं में पढ़ाई होती है?" "जी, ऐसा ही है। दिन के वक्त गाँव के लड़के-लड़कियाँ खेती-बाड़ी या घर के काम में लगे रहते हैं – पशु चराना, बकरियों की देखभाल आदि। शाम पड़ने पर वे लोग पाठशाला में पहुँच जाते हैं। संस्थान ऐसे 150 स्कूल चला रहा है।" वह गर्व से बोले, "और इनमें 70 प्रतिशत लड़कियाँ पढ़ती हैं। हमारे यहाँ एक रात्रि पाठशाला भील जाति के बच्चों के लिए विशेष रूप से खोली गई है। संस्थान द्वारा चलाए जाने वाले 150 स्कूलों में से एक स्कूल भील बच्चों के लिए है।"

फिर कुछ याद करते हुए से, मुसकराने लगे। "जिन दिनों हमारे यहाँ जल-संरक्षण की व्यवस्था नहीं थी और दूरदराज़ गिने-चुने कुएँ थे तो गाँव की लड़कियाँ दिनभर घड़े उठाए, पानी की खोज में भटकती रहती थीं। अब किसी भी लड़की को पानी के लिए भटकना नहीं पड़ता। अब वे हँसती-चहकती हुई पाठशाला में पढ़ने आती हैं।" कहते हुए उनके चेहरे पर उपलब्धियों भरी मुसकान उभर आई थी। फिर वह उसी गर्वीली आवाज़ में कहने लगे–"हमारे संस्थान ने सौर-ऊर्जा से चलने वाले बिजलीघर, राजस्थान में ही नहीं, भारत के आठ राज्यों में भी चालित किए हैं।"

यह भी मेरे लिए चौंकाने वाली बात थी। वह सज्जन, अपने पपोटों पर अँगुली चलाते हुए उन राज्यों के नाम गिनाने लगे, "राजस्थान के अतिरिक्त, जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तरांचल, मध्य प्रदेश, बिहार, असम तथा सिक्किम।...अब तो हमारे यहाँ अनेक राज्यों के ग्रामवासी ऊर्जा के प्रशिक्षण के लिए आते हैं। मैं आपको अपनी प्रयोगशाला दिखाऊँगा। वे लोग यहाँ से प्रशिक्षण प्राप्त कर, अपने गाँवों में लौटकर सौर-ऊर्जा की व्यवस्था करते हैं। लद्दाख जैसी जगह में लगभग 900 परिवारों को इन प्रयासों से सौर-ऊर्जा का लाभ मिला।" फिर वह बताने लगे –"सौर-ऊर्जा की दिशा में हमारा पहला प्रयास 1984 में हुआ था जब हम लोग संस्थान के चिकित्सा केंद्र के लिए सौर-ऊर्जा का उपयोग करना चाहते थे। और जब उपकरण लग गया तो संस्थान के लोगों ने ही उसकी देख-रेख का दायित्व अपने ऊपर ले लिया।" कहते हुए वह सज्जन फिर से मुसकरा दिए।

"यहीं से हमारे पहले सौर ऊर्जा इंजीनियर तैयार होने लगे। हमारा उद्देश्य रहता है कि हम आत्मनिर्भर हों। हमारे यहाँ नल-मिस्त्री ही नहीं, घरों के नक्शे बनाने वाले तथा राजमिस्त्री, सौर-ऊर्जा की देखभाल करने वाले, धातु का काम करने वाले, सभी अपने लोग हैं। और उनमें कुछ तो निरक्षर हैं। हमारा सबसे बड़ा शिल्पी निरक्षर है, जिसने गृह निर्माण के काम में सबसे अधिक योगदान दिया।" जहाँ पर हम लोग खड़े थे, जलाशय से कुछ ही दूरी पर, एक गोलाकार छत वाली छोटी-सी इमारत की ओर इशारा करते हुए बोले, "वह गोलाकार गुंबदनुमा छत वाली इमारत भी हमारे अपने कारीगरों की देन है।"

फिर, मेरे बाजू पर हाथ रख कर बोले –"इसका यह मतलब नहीं कि हम, शहरों में रहने वाले सुशिक्षित विशेषज्ञों से दूर रहते हैं। हरगिज़ नहीं । उनका सहयोग लेते हैं, उस सहयोग का स्वागत करते हैं । यहाँ का बहुत कुछ साझे प्रयास की ही देन है। परंतु हम मूलतः अपनी क्षमताओं को ही बढ़ाते रहना चाहते हैं ताकि बात-बात पर बाहर के लोगों का मुँह नहीं जोहना पड़े । वास्तव में हमारे लोग बड़ी कुशलता से उपकरणों को चलाना सीख लेते हैं।"

अर्धगोलाकार गुंबद वाले छोटे से भवन के निकट ही मुझे एक चबूतरा-सा नज़र आया, जो बहुत ऊँचा तो नहीं था, पर मुझे लगा जैसे वह नाटक खेलने का मंच हो। किसी भी नाट्यगृह का मंच मुझे चुंबक की तरह खींचता है। मैंने उसकी ओर इशारा किया, तो वह सज्जन बोले–"पर हमारी सबसे बड़ी उपलब्धि पुतलियों का खेल दिखाने की रही है, जो हमारे यहाँ बड़े लोकप्रिय हैं।"

फिर वह पुतलियों की चर्चा करने लगे–"पुतलियों का तमाशा, मात्र मनोरंजन का ही माध्यम नहीं है। वह प्रचार-प्रसार का, विचार-विमर्श का और भी अधिक सक्षम माध्यम है। गाँव-गाँव में, जहाँ शिक्षा से वंचित लोग रहते हैं, वहाँ पुतलियों के तमाशे के माध्यम से हम उनके जीवनयापन की चर्चा करते हैं, उनकी समस्याओं की भी । कभी-कभी तो तमाशे के दौरान ही देखने वालों के बीच बहस चल पड़ती है। पुतलियों के तमाशे से राजा-रानी की प्रेम कहानी ही नहीं सुनाई जाती, वहाँ ग्रामीण लोगों की समस्याओं–उधार लेने की समस्या, ऋण की अदायगी, छूतछात आदि ग्रामीण जीवन से संबद्ध अनेक मसलों पर विचार-विनिमय कर सकते हैं। इस तरह पुतलियों के तमाशों के द्वारा हम निरक्षर ग्रामवासियों को अधिक सचेत कर सकते हैं। इसी भाँति गाँव की स्त्रियों को पेश आने वाली समस्याओं के बारे में भी–उनकी सेहत-तंदुरुस्ती के बारे में, उनके अधिकारों के बारे में, उनकी पगार के बारे में (उन्हें भी मर्दों के बराबर पगार मिले), स्त्रियों के साथ की जाने वाली ज़्यादतियों के बारे में, बच्चों की देखभाल के बारे में आदि अनेक बातों को लेकर चर्चा होने लगती है। इतना ही नहीं, खेती-बाड़ी से जुड़ी अनेक योजनाओं की चर्चा की जाती है । ...पुतलियों का तमाशा इस तरह, एक बहुत बड़ी सामाजिक भूमिका निभाता है। पर इसका यह मतलब नहीं कि केवल विचार-विमर्श के लिए पुतलियों के तमाशे दिखाए जाते हैं। साथ में संगीत, सहगान, कितना कुछ रहता है।" वह बड़े उत्साह से कहे जा रहे थे।

तभी संस्थान का कोई व्यक्ति, जो कोई कारीगर लगता था किसी ज़रूरी काम से उन्हें मिलने आया। वह कुछ समय तक, किसी स्थानीय समस्या को लेकर उसके साथ बतियाते रहे। जब वह चला गया तो कहने लगे–"यह खराद पर काम करने वाला मिस्त्री है । मामूली पढ़ा-लिखा है, पर बहुत होशियार है। आपको एक किस्सा सुनाऊँ। बहुत दिन पहले की बात है, लगभग 1980 के आस-पास की। हमारे यहाँ कुएँ में से पानी खींचने के थोड़े से पंप लगे थे। पर जब कोई पंप बिगड़ जाता तो मुसीबत पड़ जाती कि उसकी मरम्मत कौन

करे। फिर हमारे अपने लोगों ने पहलकदमी की और पंप ठीक करने का काम सीख लिया। अब हम तो संतुष्ट हो गए । पर यह समस्या केवल हमारी ही नहीं थी। पूरे राज्य में हज़ारों की संख्या में जल खींचने के पंप लगे थे । इस समस्या को सुलझाने के लिए हमारे संस्थान ने राज्य सरकार को सुझाव दिया कि वह इस काम के लिए बेरोज़गार युवकों को भरती कर ले और उन्हें ट्रेनिंग देकर नल ठीक करने का काम सिखा दे। इस पर पढ़े-लिखे इंजीनियर तो बहुत बिगड़े, पर राज्य सरकार हमारे संस्थान का सुझाव मान गई। आप सच मानिए, राज्य में ऐसे ही 600 के करीब 'बेरोज़गार' युवक इस समय राज्य के कुल 15,000 नलों की देख-रेख कर रहे हैं।

हमारे यहाँ हर बात का फ़ैसला यहाँ के ग्रामीण लोग ही करते हैं। कोई छिपाव-दुराव नहीं है। प्रत्येक काम सबका साझा काम है, हर काम का दिशा-निर्देश यहाँ के लोग करते हैं। संस्थान में काम करने वालों में 90 प्रतिशत हमारे ग्रामीण लोग ही हैं। वे अपने काम के लिए अपना मनपसंद काम चुन लेते हैं—हमने अपनी ही पहलकदमी पर छोटे-छोटे दो-दो कमरों के घर बनवाए हैं। निर्माण के लिए पत्थर, शिलाएँ, सीमेंट, गारा-चूना, बजरी, ईंट आदि लगभग सारा सामान हमें गाँव से ही उपलब्ध हो गया। ...और ऐसे ही पानी के ताल के निर्माण के लिए भी जिसमें चार लाख लीटर वर्षा का जल, हर साल इकट्ठा किया जा सकता है ।और अब तक इतने ताल बनाए जा चुके हैं जिनमें लगभग दो करोड़ लीटर जल इकट्ठा किया जा सकता है।"

अब हम संस्थान के विभिन्न भागों का दौरा कर रहे थे। मेरे लिए, हर पग पर कोई-न-कोई चौंकाने वाली बात थी। वास्तव में मुझे ऐसे किसी संस्थान का दौरा क़रने का अवसर ही नहीं मिला था, रंगशाला, शिल्पशालाएँ, वेधशाला जिसमें विभिन्न प्रदेशों से आए शिक्षार्थी प्रशिक्षण ले रहे थे जिसमें बहुत-सी लड़कियाँ भी थीं। फिर हम चलते-चलते संस्थान के पुस्तकालय में जा पहुँचे। हमने अभी पुस्तकालय में कदम रखा ही था कि एक सज्जन सैकड़ों पुस्तकों से भरी अलमारियों में से दो-तीन पुस्तकें निकालकर मेरी ओर चले आ रहे थे। वह मेरी ही पुस्तकें उठाए हुए थे। मुझे, निश्चय ही बड़ा सुखद आश्चर्य हुआ और पुस्तकों को देखकर लगता भी था कि कुछ पाठकों ने इन्हें पढ़ा भी है।

उसी पुस्तकालय में एक युवती छोटे से मंच पर अपने सामने कंप्यूटर रखे उस पर काम कर रही थी। वह भी गाँव की ही लड़की थी जो पढ़-लिखकर कंप्यूटर पर हिसाब-किताब

का काम करने लगी थी। उस ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में उसे कंप्यूटर पर काम करते देखकर निश्चय ही बड़ा अच्छा लगा। संस्थान अपने कार्यकलाप में जहाँ अतीत से जुड़ता था और परंपरागत अनुभवों-प्रथाओं से लाभ उठाना चाहता था, वहाँ वर्तमान और भविष्य से भी जुड़ता था, अपनी दृष्टि में भविष्योन्मुखी था।

पुस्तकालय में से निकले ही थे कि और बड़ा सुखद अनुभव हुआ। एक विकलांग युवती, बैसाखियों के सहारे, बरामदे की ओर चली आ रही थी । कोई ग्रामीण लड़की ही रही होगी, पर खिला-खिला चेहरा, साफ़-सुथरे कपड़े, चेहरे पर झलकता आत्मविश्वास, हलकी-सी मुसकराहट । मानो संस्थान में आए लोगों का स्वागत कर रही हो। उसने हाथ जोड़ कर नमस्कार किया । उसे देखकर मुझे लगा जैसे उसके चेहरे पर खिली आत्मविश्वास भरी मुसकराहट इसी संस्थान की देन है जिसने यहाँ के लोगों को अपने व्यक्तित्व का बोध कराया है। पुस्तकालय से निकलकर हम लोग अब एक सभागार में प्रवेश कर रहे थे। बड़ा-सा हॉल, कमरा, फ़र्श पर दरियाँ, छत पर से लटकते पंखे चल रहे थे, और सभागार संस्थान के सक्रिय कार्यकर्ताओं, ग्रामीण पुरुषों-स्त्रियों से भरा था।

मैं कुछ-कुछ अपने ही आग्रह पर यहाँ पहुँच गया था, संस्थान के कार्यकलाप का पहलू देखने के लिए। क्योंकि न तो मुझे विचाराधीन विषय की जानकारी थी, और यदि यह जानकारी होती भी तो भी मेरे पल्ले कुछ भी पड़ने वाला नहीं था, क्योंकि उनका विचार-विमर्श अपनी स्थानीय बोली में चलने वाला था। पर फिर भी मेरे लिए देखने-जानने को बहुत कुछ था।

सभागार में ग्रामीण स्त्रियाँ-पुरुष बैठे थे, स्त्रियाँ प्रथानुसार एक ओर, पुरुष दूसरी ओर। बातचीत बड़े अनौपचारिक ढंग से चल रही थी। एक बूढ़ी अम्मा, हाथ पसार-पसार कर अपना तर्क सुना रही थीं । जिस तरह हाथ पसार रही थीं मुझे लगा बड़ी गर्मजोशी में बोल रही हैं, पर फिर स्वयं ही कभी-कभी अपने पोपले मुँह पर हाथ रखकर हँसने लगती थीं ... मैं देश की जनतंत्रात्मक पद्धति की एक गर्वीली इकाई का कार्यकलाप देख रहा था। बहुत कुछ देखा था, जो सचमुच स्फूर्तिदायक था, प्रेरणाप्रद था। मुझे अपने कमरे की ओर ले जाते हुए संस्थान के प्रतिनिधि मुझे संस्थान की मूल अवधारणाओं के बारे में बता रहे थे। यहाँ काम करने वाले अधिकतर लोग गाँव के ही युवक-युवतियाँ थे जिन्होंने पाँचवीं कक्षा से लेकर बारहवीं कक्षा तक की तालीम पाई थी । फिर अभ्यासवश अपने पपोटों पर उँगली चलाते

हुए बोले—"यहाँ सभी बराबर हैं, सभी को मान्यता मिलती है, परंतु यदि प्राथमिकता दी जाती है तो गरीब ग्रामीणों को, स्त्रियों को और निम्न जाति के लोगों को।

यहाँ कोई बड़ा या छोटा नहीं है। यहाँ सभी सीखना चाहते हैं, सीखने के इच्छुक हैं। गांधी जी के कथनानुसार, गाँव का कोई भी मामूली पढ़ा-लिखा व्यक्ति कोई-न-कोई हुनर सीख सकता है। उसके लिए शहरी शिक्षा की डिग्रियाँ लेने की कोई ज़रूरत नहीं है। यहाँ पैसे के प्रलोभन के लिए कोई स्थान नहीं है। धन बटोरने की इच्छा से यहाँ कोई काम नहीं करता। नंगे पाँव चलने वाले इस संस्थान में हर प्रकार की पहलकदमी को प्रोत्साहित किया जाता है। यहाँ स्त्रियों को समानाधिकार प्राप्त है। यहाँ भी गांधी जी के कथनानुसार वे किसी से पीछे नहीं हैं, मामूली पढ़ाई कर चुकने पर भी स्त्रियाँ, बड़ी कुशलता से कंप्यूटर पर काम कर रही हैं, पानी के नल मरम्मत कर रही हैं, सौर-ऊर्जा के उपकरण लगा रही हैं, और पानी के तालों की व्यवस्था कर रही हैं। और सामान्यतः उनका काम पुरुषों की तुलना में इक्कीस ही है, बीस नहीं।

संस्थान में व्यक्ति को रचनात्मक तथा सकारात्मक विकास के लिए सुविधाएँ प्राप्त होंगी। संस्थान देश के संविधान के अनुरूप और अहिंसा से प्रेरित साधनों द्वारा सामाजिक न्याय को क्रियान्वित करेगा। संस्थान ऐसी टेक्नालॉजी को मान्यता नहीं देगा, जिससे लोगों की रोज़ी-रोटी पर बुरा असर पड़े।"

दूसरे दिन प्रातः अपने शहर लौटने से पहले, संस्थान के डायरेक्टर, श्री बंकर राय से घड़ी भर के लिए मिलने का सुअवसर मिला, पिछले तीस वर्ष से वे इस संस्थान का संचालन करते आ रहे थे, और उन्होंने इसे एक विरल, प्रतिष्ठित, ख्याति-प्राप्त संस्था का रूप दिया था। कोई भी व्यक्ति जो गरीब ग्रामवासियों की क्षमताओं को इतनी लगन और निष्ठा के साथ निर्माण कार्यों में लगा सकता है, वह निश्चय ही श्रद्धा का पात्र है।

उन्हीं से मिलने पर पता चला कि उस संस्थान की, जिसे उन्होंने और उनके सहकर्मियों ने नंगे पाँव आगे बढ़ने वाले संस्थान की संज्ञा दे रखी थी, ख्याति अब दूर-दूर तक पहुँचने लगी है। कुछ ही समय पहले इस संस्थान को अंतर्राष्ट्रीय संस्था, आगा खाँ फ़ाउंडेशन द्वारा बहुत बड़े पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। दिल्ली की ओर हमारी जीप बढ़ने लगी है। तिलोनिया पीछे छूट चुका है। पर बार-बार मन में एक ही वाक्य उठता है

कि तिलोनिया का भविष्य और भी अधिक उज्ज्वल हो, देश में एक तिलोनिया नहीं, बीसियों, सैकड़ों तिलोनिया उठ खड़े हों–देश की गरीब जनता का आत्मविश्वास और आत्मसम्मान बढ़ाने वाले, देश को प्रगति के पथ पर ले जाने वाले।

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. लेखक के दिल्ली से बाहर जाने के क्या कारण थे?
2. लेखक दिल्ली से निकल तिलोनिया ही क्यों गया?
3. संस्थान गांधी जी की किन मान्यताओं के आधार पर चल रहा था?
4. लेखक, श्री बंकर राय को श्रद्धा का पात्र क्यों मानता है?
5. पुतलियों के तमाशे द्वारा कौन-कौन से प्रयोजन पूरे किए जाते हैं?
6. संस्थान ने राजस्थान के अतिरिक्त किन-किन राज्यों में सौर-ऊर्जा से चलने वाले बिजलीघर चालित किए हैं?

लिखित

1. तिलोनिया के लोगों ने जल-संग्रहण एवं जल-संरक्षण के लिए क्या व्यवस्था की थी?
2. संस्थान की स्थापना के पीछे क्या उद्देश्य थे?
3. संस्थान में सौर-ऊर्जा से प्राप्त बिजली का उपयोग किन-किन कार्यों के लिए किया जाता है?
4. संस्थान की कार्यप्रणाली के माध्यम से सिद्ध कीजिए कि संस्थान का मूल लक्ष्य आत्मनिर्भरता है ।
5. तिलोनिया में पुतलियों का तमाशा सामाजिक जागृति के लिए किस प्रकार एक सशक्त मंच प्रदान करता है?

6. आप लेखक की इस उक्ति से कहाँ तक सहमत हैं कि तिलोनिया में 'हमारे देश के समसामयिक इतिहास का एक विस्मयकारी पन्ना लिखा जा रहा है।'

भाषा-अध्ययन

1. निम्नलिखित में से कौन से शब्द युग्म हैं और कौन से पुनरुक्त–

   अपने-अपने, ऊबड़-खाबड़, दाएँ-बाएँ, जगह-जगह, छोटे-छोटे, नौकर-चाकर, चलते-चलते, देख-रेख ।

2. निम्नलिखित वाक्यों में से मिश्र वाक्य और संयुक्त वाक्यों को अलग-अलग लिखिए–

   (क) सहसा हमारी जीप ने एक मोड़ काटा और हम तिलोनिया की छोटी-सी बस्ती में थे।

   (ख) हम बाहर की जानकारी से भी पूरा-पूरा लाभ उठाते हैं, पर हम मूलतः स्वावलंबी बनना चाहते हैं ।

   (ग) ज़रूरत इस बात की है कि हम शताब्दियों की इस परंपरागत जानकारी को नष्ट नहीं होने दें ।

   (घ) सौर-ऊर्जा की दिशा में हमारा पहला प्रयास 1984 में हुआ था जब हम लोग संस्थान के चिकित्सा केंद्र के लिए सौर-ऊर्जा का उपयोग करना चाहते थे।

   (ङ) यदि प्राथमिकता दी जाती है, तो गरीब ग्रामीणों को, स्त्रियों को और निम्न जाति के लोगों को।

योग्यता-विस्तार

कक्षा में चर्चा कीजिए कि आज के युग में वैज्ञानिक उपकरणों के अभाव में भी स्थानीय साधनों के द्वारा उन्नति की जा सकती है।

शब्दार्थ और टिप्पणी

समसामयिक	:	आजकल का
जरनैली	:	प्रधान सड़क
बोझिल	:	उबाऊ वातावरण, अरुचिकर वातावरण
अलसाहट	:	सुस्ती
पहलकदमी	:	शुरुआत
अवहेलना	:	उपेक्षा
नामुमकिन	:	असंभव
स्वावलंबी	:	आत्मनिर्भर
सहभागिता	:	हिस्सेदारी
फ़र्शी	:	ज़मीन पर बैठने की व्यवस्था
स्निग्ध	:	स्नेहिल, प्रेमपूर्ण
पपोटे	:	पलकें
सौर-ऊर्जा	:	सूर्य से प्राप्त शक्ति
शिल्पी	:	कारीगर
खराद	:	धातु या लकड़ी को चिकना, सुडौल बनाने की मशीन
विमर्श	:	विवेचन
रंगशाला	:	नाट्यशाला
वेधशाला	:	यंत्रों की सहायता से ग्रहों के अध्ययन के लिए निर्मित स्थान
अवधारणा	:	मन में किसी धारणा, कल्पना या विचार का उदय होना, बनना या स्थिर होना।

हजारी प्रसाद द्विवेदी

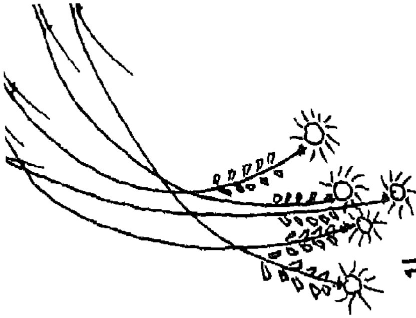
हजारी प्रसाद द्विवेदी का जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया ज़िले के 'आरत दूबे का छपरा' नामक गाँव में सन 1907 में हुआ। उनकी प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही संस्कृत-अध्ययन द्वारा हुई। उच्च शिक्षा काशी हिंदू विश्वविद्यालय में मिली, जहाँ से उन्होंने ज्योतिषाचार्य की उपाधि प्राप्त की। सन 1940 में द्विवेदी जी शांतिनिकेतन में अध्यापक नियुक्त हुए। बाद में वे वहाँ के हिंदी भवन के निदेशक बने। सन 1949 में लखनऊ विश्वविद्यालय ने आचार्य द्विवेदी को कबीर पर गहन अध्ययन करने के लिए पीएच.डी. की मानद उपाधि से सम्मानित किया।

सन 1950 तक शांतिनिकेतन में रहने के पश्चात उन्हें काशी हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग का प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष बनाया गया। कई वर्ष तक वहाँ अध्यापन करने के बाद द्विवेदी जी की नियुक्ति पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ में प्रोफ़ेसर के पद पर हुई। सन 1957 में भारत सरकार ने उन्हें पद्मभूषण की उपाधि से अलंकृत किया। वे आजीवन अनेक शैक्षिक और साहित्यिक योजनाओं से जुड़े रहे। उनकी मृत्यु सन 1979 में हुई।

आचार्य द्विवेदी ने साहित्य की अनेक विधाओं में उच्चकोटि की रचनाएँ कीं। उनके निबंधों में सरसता, गंभीरता, विनोदप्रियता और विद्वत्ता के अभूतपूर्व समन्वय के दर्शन होते हैं। छोटे-छोटे सहज, सरल और काव्यात्मक अभिव्यक्ति वाले वाक्यों में वे गंभीर बातें कह जाते हैं। ललित निबंध के क्षेत्र में वे बेजोड़ हैं। उनकी प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं–

अशोक के फूल, कुटज, कल्पलता, बाणभट्ट की आत्मकथा, पुनर्नवा, चारुचंद्र लेख, अनाम दास का पोथा, कबीर, हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास, हिंदी साहित्य की भूमिका आदि।

द्विवेदी जी का यह ललित निबंध **नाखून क्यों बढ़ते हैं ?** मनुष्य का उसकी मनुष्यता से साक्षात्कार कराता है। लेखक के अनुसार नाखून का बढ़ना हमारी पाशविक वृत्ति का परिचायक है, उसका काटना या न बढ़ने देना मनुष्यता का। मनुष्य मारणास्त्रों से तथाकथित सफलता तो पा सकता है, पर मनुष्य की चरितार्थता तो प्रेम, मैत्री और त्याग में है। अतः नाखून बढ़ते हैं तो बढ़ें, पर उन्हें काटना मनुष्यता की निशानी है। हमें चाहिए कि हम अपने भीतर रह गए पशुता के चिह्नों को छोड़कर मनुष्यता को अपनाएँ।



नाखून क्यों बढ़ते हैं?

बच्चे कभी-कभी चक्कर में डाल देने वाले प्रश्न कर बैठते हैं। अल्पज्ञ पिता बड़ा दयनीय जीव होता है। मेरी छोटी लड़की ने जब उस दिन पूछ दिया कि आदमी के नाखून क्यों बढ़ते हैं, तो मैं कुछ सोच ही नहीं सका। हर तीसरे दिन नाखून बढ़ जाते हैं, बच्चे कुछ दिन तक अगर उन्हें बढ़ने दें, तो माँ-बाप अकसर उन्हें डाँटा करते हैं। पर कोई नहीं जानता कि ये अभागे नाखून क्यों इस प्रकार बढ़ा करते हैं। काट दीजिए, वे चुपचाप दंड स्वीकार कर लेंगे, पर निर्लज्ज अपराधी की भाँति फिर छूटते ही सेंध पर हाज़िर ! आखिर ये इतने बेहया क्यों हैं?

कुछ लाख ही वर्षों की बात है, जब मनुष्य जंगली था, वनमानुष जैसा। उसे नाखून की ज़रूरत थी। उसकी जीवन-रक्षा के लिए नाखून बहुत ज़रूरी थे। असल में वही उसके अस्त्र थे। दाँत भी थे, पर नाखून के बाद ही उनका स्थान था। उन दिनों उसे जूझना पड़ता था, प्रतिद्वंद्वियों को पछाड़ना पड़ता था, नाखून उसके लिए आवश्यक अंग था। फिर धीरे-धीरे वह अपने अंग से बाहर की वस्तुओं का सहारा लेने लगा। पत्थर के ढेले और पेड़ की डालें काम में लाने लगा (रामचंद्र जी की वानरी सेना के पास ऐसे ही अस्त्र थे)। उसने हड्डियों के भी हथियार बनाए। इन हड्डियों के हथियारों में सबसे मज़बूत और सबसे ऐतिहासिक था देवताओं के राजा का वज्र, जो दधीचि मुनि की हड्डियों से बना था। मनुष्य और आगे बढ़ा। उसने धातु के हथियार बनाए। जिनके पास लोहे के अस्त्र और शस्त्र थे, वे विजयी हुए। इतिहास आगे बढ़ा। पलीते-वाली बंदूकों ने, कारतूसों ने, तोपों ने, बमों ने, बमवर्षक वायुयानों ने इतिहास को किस कीचड़-भरे घाट तक घसीटा है, यह सबको मालूम है। नख-धर मनुष्य अब एटम-बम पर भरोसा करके आगे की ओर चल पड़ा है। पर उसके नाखून अब भी बढ़ रहे हैं। अब भी प्रकृति मनुष्य को उसके भीतर वाले अस्त्र से वंचित नहीं कर रही है, अब भी वह याद दिला देती है कि तुम्हारे नाखून को भुलाया नहीं जा सकता। तुम वही लाख वर्ष पहले के नखदंतावलंबी जीव हो—पशु के साथ एक ही सतह पर विचरने वाले और चरने वाले।

ततः किम् ! मैं हैरान होकर सोचता हूँ कि मनुष्य आज अपने बच्चों को नाखून न काटने के लिए डाँटता है। किसी दिन—कुछ थोड़े लाख वर्ष पूर्व—वह अपने बच्चों को नाखून नष्ट करने पर डाँटता रहा होगा। लेकिन प्रकृति है कि वह अब भी नाखून को जिलाए जा रही है और मनुष्य है कि वह अब भी उसे काटे जा रहा है। कमबख्त रोज़ बढ़ते हैं, क्योंकि वे अंधे हैं, नहीं जानते कि मनुष्य को इससे कोटि-कोटि गुना शक्तिशाली अस्त्र मिल चुका है ! मैं मनुष्य के नाखून की ओर देखता हूँ, तो कभी-कभी निराश हो जाता हूँ। ये उसकी भयंकर पाशवी वृत्ति के जीवंत प्रतीक हैं। मनुष्य की पशुता को जितनी बार भी काट दो, वह मरना नहीं जानती।

मानव-शरीर का अध्ययन करने वाले प्राणि विज्ञानियों का निश्चित मत है कि मानव-चित्त की भाँति मानव-शरीर में भी बहुत-सी अभ्यासजन्य सहज वृत्तियाँ रह गई हैं। उसे दीर्घकाल तक उनकी आवश्यकता रही है। अतएव शरीर ने अपने भीतर एक ऐसा गुण पैदा कर लिया है कि वे वृत्तियाँ अनायास ही, और शरीर के अनजान में भी, अपने-आप काम करती हैं। नाखून का बढ़ना उसमें से एक है, केश का बढ़ना दूसरा है, दाँत का दुबारा उठना तीसरा है, पलकों का गिरना चौथा है। और असल में सहजात वृत्तियाँ अनजान की स्मृतियों को ही कहते हैं। हमारी भाषा में भी इसके उदाहरण मिलते हैं। अगर आदमी अपने शरीर की, मन की और वाक् की अनायास घटने वाली वृत्तियों के विषय में विचार करे, तो उसे अपनी वास्तविक प्रवृत्ति पहचानने में बहुत सहायता मिले। पर कौन सोचता है? सोचना तो क्या, उसे इतना भी पता नहीं चलता कि उसके भीतर नख बढ़ा लेने की जो सहजात वृत्ति है, वह उसके पशुत्व का प्रमाण है। उन्हें काटने की जो प्रवृत्ति है, वह उसकी मनुष्यता की निशानी है और यद्यपि पशुत्व के चिह्न उसके भीतर रह गए हैं, पर वह पशुत्व को छोड़ चुका है। पशु बनकर वह आगे नहीं बढ़ सकता। उसे कोई और रास्ता खोजना चाहिए। अस्त्र बढ़ाने की प्रवृत्ति मनुष्यता की विरोधिनी है।

मेरा मन पूछता है—किस ओर? मनुष्य किस ओर बढ़ रहा है? पशुता की ओर या मनुष्यता की ओर? अस्त्र बढ़ाने की ओर या अस्त्र काटने की ओर? मेरी निर्बोध बालिका ने मानो मनुष्य-जाति से ही प्रश्न किया है—जानते हो, नाखून क्यों बढ़ते हैं? यह हमारी पशुता के अवशेष हैं। मैं भी पूछता हूँ—जानते हो, ये अस्त्र-शस्त्र क्यों बढ़ रहे हैं? ये हमारी पशुता की निशानी हैं। भारतीय भाषाओं में प्रायः ही अंग्रेज़ी के 'इंडिपेंडेंस' शब्द का समानार्थक शब्द नहीं व्यवहृत होता। 15 अगस्त को जब अंग्रेज़ी भाषा के पत्र 'इंडिपेंडेंस' की घोषणा कर

रहे थे, देशी भाषा के पत्र 'स्वाधीनता दिवस' की चर्चा कर रहे थे। 'इंडिपेंडेंस' का अर्थ है अनधीनता या किसी की अधीनता का अभाव, पर 'स्वाधीनता' शब्द का अर्थ है अपने ही अधीन रहना। अंग्रेज़ी में कहना हो, तो 'सेल्फ़डिपेंडेंस' कह सकते हैं। मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि इतने दिनों तक अंग्रेज़ी की अनुवर्तिता करने के बाद भी भारतवर्ष 'इंडिपेंडेंस' को अनधीनता क्यों नहीं कह सका? उसने अपनी आज़ादी के जितने भी नामकरण किए– स्वतंत्रता, स्वराज, स्वाधीनता – उन सबमें 'स्व' का बंधन अवश्य रखा। यह क्या संयोग की बात है या हमारी समूची परंपरा ही अनजान में, हमारी भाषा के द्वारा प्रकट होती रही है? हमारा इतिहास बहुत पुराना है, हमारे शास्त्रों में इस समस्या को नाना भावों और नाना पहलुओं में विचारा गया है। हम कोई नौसिखुए नहीं हैं, जो रातों-रात अनजान जंगल में पहुँचाकर अरक्षित छोड़ दिए गए हों। हमारी परंपरा महिमामयी, उत्तराधिकार विपुल और संस्कार उज्ज्वल हैं। हमारे अनजान में भी ये बातें हमें एक खास दिशा में सोचने की प्रेरणा देती हैं। यह ज़रूर है कि परिस्थितियाँ बदल गई हैं। उपकरण नए हो गए हैं और उलझनों की मात्रा भी बहुत बढ़ गई हैं, पर मूल समस्याएँ बहुत अधिक नहीं बदली हैं। भारतीय चित्त जो आज भी 'अनधीनता' के रूप में न सोचकर 'स्वाधीनता' के रूप में सोचता है, वह हमारे दीर्घकालीन संस्कारों का फल है। वह 'स्व' के बंधन को आसानी से नहीं छोड़ सकता। अपने आप पर अपने-आपके द्वारा लगाया हुआ बंधन हमारी संस्कृति की बड़ी भारी विशेषता है। मैं ऐसा तो नहीं मानता कि जो कुछ हमारा पुराना है, जो-कुछ हमारा विशेष है, उससे हम चिपटे ही रहें। पुराने का 'मोह' सब समय वांछनीय ही नहीं होता। मरे बच्चे को गोद में दबाए रहने वाली 'बंदरिया' मनुष्य का आदर्श नहीं बन सकती। परंतु मैं ऐसा भी नहीं सोच सकता कि हम नई अनुसंधित्सा के नशे में चूर होकर अपना सरबस खो दें। कालिदास ने कहा था कि सब पुराने अच्छे नहीं होते, सब नए खराब ही नहीं होते। भले लोग दोनों की जाँच कर लेते हैं, जो हितकर होता है उसे ग्रहण करते हैं, और मूढ़ लोग दूसरों के इशारे पर भटकते रहते हैं। सो, हमें परीक्षा करके हितकर बात सोच लेनी होगी और अगर हमारे पूर्वसंचित भंडार में वह हितकर वस्तु निकल आए, तो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है?

मनुष्य पशु से किस बात में भिन्न है ! आहार-निद्रा आदि पशु-सुलभ स्वभाव उसके ठीक वैसे ही हैं, जैसे अन्य प्राणियों के। लेकिन वह फिर भी पशु से भिन्न है। उसमें संयम है, दूसरे के सुख-दुःख के प्रति संवेदना है, श्रद्धा है, तप है, त्याग है। यह मनुष्य के स्वयं के उद्भावित

बंधन हैं। इसीलिए मनुष्य झगड़े-टंटे को अपना आदर्श नहीं मानता, गुस्से में आकर चढ़ दौड़ने वाले अविवेकी को बुरा समझता है तथा वचन,मन एवं शरीर से किए गए असत्याचरण को गलत आचरण मानता है। यह किसी भी जाति या वर्ण या समुदाय का धर्म नहीं है। यह मनुष्यमात्र का धर्म है। महाभारत में इसीलिए निर्वैर भाव, सत्य और अक्रोध को सब वर्णों का सामान्य धर्म कहा है।

गौतम ने ठीक ही कहा था कि मनुष्य की मनुष्यता यही है कि वह सबके दुःख-सुख को सहानुभूति के साथ देखता है। यह आत्म-निर्मित बंधन ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है। अहिंसा,सत्य और अक्रोधमूलक धर्म का मूल उत्स यही है। मुझे आश्चर्य होता है कि अनजान में भी हमारी भाषा में यह भाव कैसे रह गया है। लेकिन मुझे नाखून के बढ़ने पर आश्चर्य हुआ था। अज्ञान सर्वत्र आदमी को पछाड़ता है। और आदमी है कि सदा उससे लोहा लेने को कमर कसे है।

मनुष्य को सुख कैसे मिलेगा? बड़े-बड़े नेता कहते हैं, वस्तुओं की कमी है, और मशीन बैठाओ, और उत्पादन बढ़ाओ, और धन की वृद्धि करो, और बाह्य उपकरणों की ताकत बढ़ाओ। एक बूढ़ा था। उसने कहा था—बाहर नहीं, भीतर की ओर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को हटाओ, क्रोध और द्वेष को दूर करो, लोक के लिए कष्ट सहो, आराम की बात मत सोचो, प्रेम की बात सोचो, आत्म-तोषण की बात सोचो, काम करने की बात सोचो। उसने कहा—प्रेम ही बड़ी चीज़ है, क्योंकि वह हमारे भीतर है। उच्छृंखलता पशु की प्रवृत्ति है,'स्व' का बंधन मनुष्य का स्वभाव है। बूढ़े की बात अच्छी लगी या नहीं, पता नहीं। उसे गोली मार दी गई, आदमी के नाखून बढ़ने की प्रवृत्ति ही हावी हुई। मैं हैरान होकर सोचता हूँ—बूढ़े ने कितनी गहराई में पैठकर मनुष्य की वास्तविक चरितार्थता का पता लगाया था।

ऐसा कोई दिन आ सकता है, जबकि मनुष्य के नाखूनों का बढ़ना बंद हो जाएगा। प्राणिशास्त्रियों का ऐसा अनुमान है कि मनुष्य का यह अनावश्यक अंग उसी प्रकार झड़ जाएगा, जिस प्रकार उसकी पूँछ झड़ गई है। उस दिन मनुष्य की पशुता भी लुप्त हो जाएगी। शायद उस दिन वह मारणास्त्रों का प्रयोग भी बंद कर देगा। तब तक इस बात से छोटे बच्चों को परिचित करा देना वांछनीय जान पड़ता है कि नाखून का बढ़ना मनुष्य के भीतर की पशुता की निशानी है और उसे नहीं बढ़ने देना मनुष्य की अपनी इच्छा है, अपना आदर्श है। बृहत्तर जीवन में अस्त्र-शस्त्रों को बढ़ने देना मनुष्य की पशुता की निशानी है और उनकी

बाढ़ को रोकना मनुष्यत्व का तकाज़ा। मनुष्य में जो घृणा है, जो अनायास–बिना सिखाए–आ जाती है, वह पशुत्व का द्योतक है और अपने को संयत रखना, दूसरे के मनोभावों का आदर करना मनुष्य का स्वधर्म है। बच्चे यह जानें तो अच्छा हो कि अभ्यास और तप से प्राप्त वस्तुएँ मनुष्य की महिमा को सूचित करती हैं।

मनुष्य की चरितार्थता प्रेम में है, मैत्री में है, त्याग में है, अपने को सबके मंगल के लिए निःशेष भाव से दे देने में है। नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की उस अंध सहजात वृत्ति का परिणाम है, जो उसके जीवन में सफलता ले आना चाहती है, उसको काट देना उस स्व-निर्धारित, आत्म-बंधन का फल है, जो उसे चरितार्थता की ओर ले जाती है।

नाखून बढ़ते हैं तो बढ़ें, मनुष्य उन्हें बढ़ने नहीं देगा।

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. अपनी पुत्री के किस प्रश्न पर लेखक भौचक्का रह गया?
2. बच्चों के नाखून काटने के संबंध में आदिमानव और आज के मानव के दृष्टिकोण में क्या परिवर्तन आया है?
3. नाखून के बढ़ने के अतिरिक्त लेखक और किन बातों को अभ्यासजन्य सहज वृत्तियों की कोटि में रखता है?
4. लेखक ने किस वृत्ति को पशुत्व का चिह्न और किसे मनुष्यता का चिह्न माना है?
5. मनुष्य पशु से किन बातों में भिन्न है?
6. लेखक के अनुसार मनुष्य की चरितार्थता किसमें है?

लिखित

1. धीरे-धीरे बाहर की किन-किन वस्तुओं ने नाखूनों का स्थान ले लिया? इसका क्या परिणाम हुआ?
2. 'इंडिपेंडेंस' शब्द के लिए प्रयुक्त हिंदी के शब्दों में 'स्व' के प्रयोग के क्या कारण दिए गए हैं?

3. भाषा में 'स्व' का प्रयोग हमारी परंपरा का परिचायक कैसे है?
4. लेखक पुराने और नए का सामंजस्य क्यों चाहता है?
5. कौन-सा बंधन मनुष्य को मनुष्य बनाता है?
6. लेखक किस बूढ़े की ओर संकेत कर रहा है? उस बूढ़े ने किन बातों पर आचरण करने की सलाह दी है?
7. **आशय स्पष्ट कीजिए**

   (क) अब भी प्रकृति मनुष्य को उसके भीतर वाले अस्त्र से वंचित नहीं कर रही है, अब भी वह याद दिला देती है कि तुम्हारे नाखून को भुलाया नहीं जा सकता।

   (ख) अज्ञान सर्वत्र आदमी को पछाड़ता है और आदमी है कि सदा उससे लोहा लेने को कमर कसे है।

भाषा-अध्ययन

1. निम्नलिखित वाक्यों को पढ़िए और समझिए–

   (क) अल्पज्ञ पिता **बड़ा दयनीय** जीव होता है।

   (ख) हमारा इतिहास **बहुत पुराना** इतिहास है, जिसमें इस समस्या को नाना पहलुओं से विचारा गया है।

उपर्युक्त (क) और (ख) वाक्यों में 'बड़ा दयनीय' और 'बहुत पुराना' विशेषण हैं। इन विशेषणों में भी 'बड़ा' विशेषण 'दयनीय' विशेषण की और 'बहुत' विशेषण 'पुराना' विशेषण की विशेषता बता रहे हैं। विशेषण की विशेषता बताने वाले विशेषण प्रविशेषण कहलाते हैं। पुस्तक में से चार प्रविशेषण ढूँढ़कर लिखिए।

2. निम्नलिखित शब्दों के विलोम बताइए–

   अल्पज्ञ, निर्लज्ज, पाशविक, अनायास, अनधीनता, सत्याचरण

योग्यता-विस्तार

'हमारी समूची परंपरा ही अनजान में हमारी भाषा के द्वारा प्रकट होती रही है।' भारतीय सामाजिक जीवन से उदाहरण लेते हुए इस कथन पर कक्षा में चर्चा कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

अल्पज्ञ	:	कम जानने वाला
प्रतिद्वंद्वी	:	मुकाबला करने वाला, विरोधी
पलीता	:	तोप में आग लगाने की मोटी बत्ती
नखदंतावलंबी	:	नाखूनों और दाँतों पर निर्भर
ततः किम्	:	फिर क्या
सहजात	:	जन्मजात
वाक्	:	वाणी
अनुवर्तिता	:	अनुसरण करने की प्रवृत्ति, नकलकरने की प्रवृत्ति
अनधीनता	:	किसी के अधीन न होना, स्वतंत्रता
वांछनीय	:	चाहने योग्य
अनुसंधित्सा	:	खोज की इच्छा
सरबस	:	सर्वस्व, सब कुछ
उद्भावित	:	जन्मगत
उत्स	:	स्रोत
उच्छृंखलता	:	स्वेच्छाचारिता, मनचाहा करना
चरितार्थता	:	सार्थकता, यथार्थता
मारणास्त्र	:	विनाशकारी हथियार, घातक हथियार
बृहत्तर	:	व्यापक
द्योतक	:	सूचक
निःशेष	:	संपूर्ण

रमेशचंद्र शाह

रमेशचंद्र शाह का जन्म उत्तरांचल में सन 1937 में हुआ। उनकी प्रारंभिक शिक्षा अल्मोड़ा में हुई। इलाहाबाद विश्वविद्‌यालय से उन्होंने अंग्रेज़ी में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की। अंग्रेज़ी के प्रसिद्‌ध कवि और भारतीय वेदांत साहित्य के अध्येता डब्ल्यू.बी.यीट्‌स पर उन्होंने शोध प्रबंध लिखा, जिसकी देश-विदेश में पर्याप्त प्रशंसा हुई।

रमेशचंद्र शाह ने कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, आलोचना, यात्रावृत्त, डायरी, अनुवाद, रिपोर्ताज, संस्मरण आदि सभी विधाओं में चालीस से अधिक पुस्तकों की रचना की। 'छायावाद की प्रासंगिकता' नामक आलोचनात्मक पुस्तक के माध्यम से उन्होंने छायावाद संबंधी अनेक प्रचलित मान्यताओं और पूर्वग्रहों का खंडन कर नवीन स्थापनाएँ कीं। उनके दार्शनिक और साहित्यिक चिंतन के लिए उन्हें रेमनासे एकेडमी, लंदन द्‌वारा व्याख्यान के लिए आमंत्रित किया गया जहाँ उन्होंने भारतीय दर्शन और उपनिषदों पर चार व्याख्यान दिए, जिन्हें रेमनासे एकेडमी ने 'एन्सेस्ट्रल वॉइसेस' के नाम से पुस्तक रूप में प्रकाशित किया। हिंदी निबंध के क्षेत्र में उन्होंने आत्मपरक निबंध लिखे। **गोबर गणेश, किस्सा गुलाम, आप कहीं नहीं रहते, विभूति बाबू** उनके मुख्य उपन्यास हैं। आत्मपरक निबंधों में **शैतान के बहाने** और **आडू का पेड़** प्रसिद्‌ध हैं।

उनकी दीर्घकालीन साहित्यिक सेवाओं के लिए उन्हें मध्य प्रदेश सरकार के संस्कृति विभाग का 'शिखर सम्मान' दिया गया। उन्हें वर्ष 2002 में बिरला फाउंडेशन द्‌वारा उनकी आलोचना कृति **आलोचना का पक्ष** के लिए 'व्यास सम्मान' प्रदान किया गया।

डायरी शैली में लिखे गए प्रस्तुत चार प्रसंग उनकी रचना **डायरी के पृष्ठों से** चुने गए हैं। पहले प्रसंग में आज की शिक्षा-व्यवस्था पर करारा व्यंग्य है। दूसरे प्रसंग में **रोमैं रोलाँ का भारत** में भारत की महान विभूतियों– गांधी, टैगोर, सुभाषचंद्र बोस, लाजपत राय और नेहरू के संबंध में रोमैं रोलाँ की प्रतिक्रियाएँ व्यक्त हुई हैं। तीसरे प्रसंग में गाँव के एक उपेक्षित और विपन्न किंतु बहुमुखी प्रतिभासंपन्न शिक्षक का रेखाचित्र है, जो अर्थाभाव के कारण उन्नति के शिखर पर नहीं पहुँच सका। परंतु इसका उसे कोई पछतावा नहीं था। उसने नैनीताल में एक आँखिन

देखी घटना के माध्यम से भारतीय जनमानस पर गांधी के प्रभाव का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है। चौथे प्रसंग में लेखक ने निराला द्‌वारा अपने समय के हिंदी साहित्य जगत में व्याप्त दलबंदी और प्रतिभा विरोधी स्थिति का उल्लेख करते हुए प्रश्न उठाया है कि क्या आज के हिंदी जगत की स्थिति भी वैसी ही नहीं है?

डायरी के पृष्ठों से

(1)

भोपाल

6 अप्रैल, 1984

भलमनसी की मूरत बने उस आदमी ने मुझे बताया, "सर, शिरोती जी की कृपा से मेरी सेकिंड पोज़ीशन आई यूनिवरसिटी में। फिर मेरी सिरीमती जी ने भी एम.ए. हिंदी से ही किया और उनकी भी सेकिंड पोज़ीशन ही आई।" फिर थोड़ा रुक के उसने पूछा, "क्यों सर, आपके विभाग के हैड तो भार्गव जी हैं ना? ..."

मैंने कहा, "नहीं। मैं ही हूँ।"

इस पर वह चहक उठा, "तब तो सर, मुझे करा ही दीजिए अंग्रेज़ी में एम.ए.।"

मैंने कहा, "क्यों? क्या करेंगे अंग्रेज़ी में एम.ए. करके? एक फर्स्ट क्लास डिग्री है तो सही आपके पास।"

बोला, "नहीं सर, हिंदी में कोई इस्कोप नहीं है। मेरी सिरीमती जी तो खैर सेंट्रल इस्कूल में आ गईं। भावे साब कमिश्नर थे। उनकी कृपा से यहीं लग गईं। मगर मैं..."

"क्यों, आप भी तो पॉलीटेकनिक में हैं।" मैंने कहा, "लेक्चरर तो होंगे ही।"

"जी नहीं, मैं पी.टी.आई. हूँ।" उसने कहा, "अंग्रेज़ी में बहुत पोस्टें निकलती हैं।"

मैं समझ गया कि अब उसे मेरी कृपा चाहिए।

"सर, आपकी आज्ञा हो, तो भर दूँ इस साल अंग्रेज़ी में।"

मैंने कहा, "इसमें मेरी आज्ञा की क्या बात है? आपका जो मन हो करें।"

"मन तो भौत है सर," वह बोला। फिर थोड़ा अटकते हुए, "सर, इसमें फस्ट डिवीजन तो मुस्किल होती होगी?"

मैंने कहा, " हाँ। "

बोला, "अंग्रेज़ी का तो सेकिंड भी अच्छा ही माना जाता है ना? सेकिंड तो बन ही जाएगी न, सर?"

मुझे चुप देखकर वह बोला, "सर, आपकी कृपा चाहिए।"

मेरा धीरज चुक रहा था। 'अच्छा भई' कह के आगे बढ़ गया। पर वह क्यों मेरा पिंड छोड़ देता इतनी आसानी से ! घिसटता रहा साथ में– "सर, अंग्रेज़ी मेरी अच्छी है। लिटरेचर आपसे नोट्स ले के पढ़ लूँगा।"

मैंने मन-ही-मन कहा, "बेशक, तुम्हारी अंग्रेज़ी भी उतनी ही अच्छी होगी जितनी हिंदी है और जितने अच्छे तुम खुद हो। मगर शायद उतनी अच्छाई काफ़ी नहीं है। साथ में किसी श्रोत्रिय की, किसी भावे की कृपा भी तुम्हें चाहिए ही।" मुझे मालूम है, उसे कोई-न-कोई कृपालु अंग्रेज़ी में भी ज़रूर मिल जाएगा। कृपालुओं की हमारे यहाँ कहाँ कोई कमी है !

(2)

दिल्ली

28 अप्रैल, 1984

'रोमैं रोलाँ का भारत' यूँ ही उलट-पुलट लेने को उठाया था। पर उसने ऐसा पकड़ा, ऐसा बाँधा कि जब तक दोनों खंड पूरे नहीं चाट लिए, चैन ही नहीं पड़ा। एक समूचा युग अपनी नाटकीय तात्कालिकता में इन पृष्ठों में प्रत्यक्ष सजीव हो उठा है। आनंद कुमार स्वामी के प्रवेश के साथ सन 1915 में यह नाटक शुरू होता है और फिर लगभग अट्ठाईस बरसों का घटनाचक्र समेटते हुए गांधी, टैगोर, सुभाष बोस, लाजपत राय, नेहरू इत्यादि चरित्रों की आवाजाही और उतार-चढ़ाव भरे कथानक के साथ उभरता है। नाटक का समापन होता है अचानक ही सन 1943 में, जब द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका से पटा रंगमंच एकाएक सूना पड़ जाता है और हम सुभाषचंद्र बोस को हिटलर से हाथ मिलाते देखते हैं। इसके ठीक पहले दीनबंधु ऐंड्रूज़ के देहावसान पर टिप्पणी है (अलविदा प्यारे ऐंड्रूज़ ! जिसने दक्षिण अफ्रीका के युवा मोहनदास गांधी को हमेशा अपनी बगल में रखा !)। वही ऐंड्रूज़ जो इस महानाटक के दो प्रमुख पात्रों–टैगोर और गांधी–के बीच सेतुबंध की तरह काम करते रहे थे।

कैसा गलियारा है यह, रोलाँ का घर, जहाँ हम रोलाँ और उनकी बहन को एक के बाद एक हमारे स्वाधीनता-संग्राम के नेताओं के आतिथ्य में जुटे, उनसे संवादरत देखते-सुनते हैं। एक-एक भंगिमा, एक-एक मोनोलॉग और डायलॉग दर्ज होता जाता है रोलाँ की डायरी में। सुभाष से भी हम एकाधिक बार मिल चुके हैं इस डायरी में—कितनी तीखी उत्तेजनापूर्ण बहसें सुन चुके हैं हम उनकी रोलाँ और उनकी बहन के साथ। क्या रोलाँ बोस के इस रूपांतरण से विचलित और क्षुब्ध हैं? स्वभावतः।

रोलाँ टैगोर के गांधी-विरोध को, 'ऑब्सेशन' (खब्त) की हद तक जानेवाली उनकी चिढ़ और झुँझलाहट को ज्यों-का-त्यों दर्ज करते हैं इस डायरी में । दिल उनका गांधी की तरफ़ ही झुकता है । टैगोर की प्रतिभा के वे कायल हैं ज़रूर, पर गांधी को लेकर टैगोर की उत्तेजनापूर्ण मुखरता उन्हें विस्मित और किंचित खिन्न भी करती है। हालाँकि अपने एंटीफ़ासिस्ट अभियान में वे गांधी का जिस तरह का सक्रिय सहयोग चाहते हैं, वह उनसे न मिलता देखकर उन्हें थोड़ी निराशा भी होती है, जिसे छुपाते नहीं। मीराबेन को उन्होंने गांधी जी से मिलने की प्रेरणा दी है—उन्हें ईसा का दूसरा अवतार बताते हुए।

(3)

नैनीताल
25 जून, 1985

सत्य हमारी कल्पना से गढ़ी गई कथाओं से कहीं अधिक विचित्र और विस्मयकारी होता है, इस उक्ति का यह आदमी चलता-फिरता दृष्टांत है। मैं जब भी नैनीताल जाता हूँ, इनसे ज़रूर मिलता हूँ। अजीब सा सुकून मिलता है मुझे इनके पास बैठकर। कितने सरल-निष्कपट, कितने विनोदी और ज़िंदादिल ! कौन कहेगा, इस व्यक्ति ने ऐसी मर्मांतक पीड़ाएँ झेली हैं ! मुझे मेरे भाई ने बताया था, जो पिछले पच्चीस बरस से इनका सहयोगी है। एक ही स्कूल में पढ़ाते हैं दोनों। जन्म देनेवाली माँ ही जिसके प्रति इतनी निष्ठुर रही हो—अविश्वसनीयता की हद तक—उसके दुःख की कहीं कोई थाह मिलेगी ? इस दुःख को पचा चुकने के बाद फिर ऐसा कौन-सा दुःख बचता है जो आपको तोड़ सके !

माँ की ममता से वंचित (मातृहीन बालक की वंचना से भी कहीं अधिक तोड़नेवाली वेदना), पत्नी की सहानुभूति से भी वंचित, समाज में भी अपनी योग्यता और अर्जित सामर्थ्य से नीचे, बहुत नीचे के स्तर पर पूरी ज़िंदगी गुज़ार देने को अभिशप्त यह व्यक्ति आखिर किस

पाताल-स्रोत से अपनी जिजीविषा और मानसिक संतुलन खींच पाता होगा ! अच्छे-खासे यूनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसरों को लजा दे, ऐसा इल्म और तेज़ दिमाग है इस स्कूल मास्टर का। पर उस असामान्य दिमाग का परिचय अपने आप नहीं मिलेगा। बहुत उकसाए कोई, तभी मिलेगा। नहीं, उन्हें अपने इल्म के प्रदर्शन में रत्ती भर भी रुचि नहीं। अपने ज़माने में हॉकी के बेहतरीन खिलाड़ी रह चुके वे, आज भी उसी युवकोचित उत्साह के साथ घंटों मैच देखते हैं – पूरे तादात्म्य और 'पैशन' के साथ। मैं इंग्लैंड जा रहा हूँ और एक वेल्श मित्र के यहाँ ठहरूँगा – यह पता चलने पर उन्होंने वेल्श लोगों के इतिहास और सांस्कृतिक विशेषताओं के बारे में ऐसी-ऐसी बातें बताईं कि मैं दंग रह गया। केल्टिक लिटरेचर के बारे में उन्हें वह सब पता था, जो कुमाऊँ विश्वविद्यालय के अंग्रेज़ी विभाग का अध्यक्ष भी न जानता होगा। कब पढ़ा होगा उन्होंने यह सब ! और इस तरह की समझ सिर्फ पढ़ने से नहीं आती, गुनने से आती है। जाने किस ज़माने के बी.ए. भर तो हैं वे। घर की हालत अच्छी होती, एम.ए. कर पाते तो किसी यूनिवर्सिटी में प्रोफ़ेसर होते। मगर,...क्या हुआ होता, यह वे शायद खुद भी कभी नहीं सोचते। किसी तरह की शिकायत या कुंठा उनके भीतर नहीं। लोग मज़ाक उड़ाते हैं उनका – इसकी भी उन्हें कोई चिंता नहीं। वे स्वयं विदूषक का बाना पहने हुए अपनी लोक-यात्रा में मगन हैं। तरह-तरह के पोस्टर बनाकर स्वयं अपनी देह पर धारण किए सीज़न के दिनों में उन्हें भीड़ भरे राजमार्गों पर जनता का मनोरंजन करते देखा जा सकता है। और, वे पोस्टर समसामयिक राजनीतिक घटना-चक्र पर सचोट और बेबाक टिप्पणी हुआ करते हैं। निरपवाद रूप से।

हम घोड़ाखाल गए थे कल। वे भी साथ थे। बस के कोलाहल के बीचोंबीच जाने क्या चर्चा छिड़ी कि वे गांधी और टैगोर के बीच घटित उस 'ऐतिहासिक' पत्राचार की बात करने लगे। और फिर, उन्होंने बचपन की अपनी एक 'आँखिन देखी' सुनाई थी। कि...किस तरह जब गांधी जी नैनीताल आए थे...छोटे से भाषण के बाद झोली फैलाई थी, तो दूर-दूर से उनका दर्शन करने आईं गाँव की स्त्रियों ने अपने नाम मात्र के चाँदी के गहने – सुहाग-चिह्न भी – वहीं उतार के गांधी जी की झोली में डाल दिए थे और मानो जनम सफल हो गया है, ऐसी धन्यता के भाव से।

(4)

भोपाल
14 दिसंबर, 1996

'निराला-रचनावली-6' में निराला की टिप्पणियाँ पढ़कर चौंक गया। क्या ये टिप्पणियाँ एकदम आज के साहित्यिक परिवेश पर भी उसी निपटता के साथ लागू नहीं होतीं? एक जगह वे कहते हैं–

"दलबंदी का भाव प्रतिभा के प्रतिकूल है। एक सच्चा साहित्यिक या कवि अपनी प्रकृति के अनुसार ही दलबंदी से पृथक रहता है।...समाज में जैसे लोग पहले थे, अब भी हैं। प्रतिभा और नवीनता का उसी प्रकार विरोध हो रहा है। यथार्थ साहित्य-निर्माता आज भी उसी प्रकार अपमान का भार रखे झुके हुए चुपचाप सरस्वती के इंगित पर चले जा रहे हैं। कोई साथ नहीं। दूसरी ओर दल के अयोग्य व्यक्ति विशेष की पुनः-पुनः होती प्रशंसा लोकमत संग्रह कर रही है। आकाश असाहित्यिक, अमौलिक और सारशून्य विवादों-नारों से प्रतिध्वनित, अशांत, क्षुब्ध हो रहा है। जनता सदा से परमुखापेक्षी रही है : सत्य रहस्य से अज्ञात।"

प्रश्न-अभ्यास

(1)

मौखिक

1. लेखक स्वयं अंग्रेज़ी विभागाध्यक्ष हैं, यह जानकर उनसे मिलने आया व्यक्ति प्रसन्न क्यों हो उठा?
2. वह अंग्रेज़ी में एम.ए. क्यों करना चाहता था?
3. उसकी पत्नी की नौकरी कैसे लगी थी?
4. उस व्यक्ति की बातचीत से उसकी योग्यता के बारे में आपकी क्या धारणा बनती है?

लिखित

1. लेखक का धीरज क्यों चुक रहा था?
2. 'कृपालुओं की हमारे यहाँ कोई कमी नहीं है।' – यह कथन हमारे समाज की किस प्रवृत्ति को उद्घाटित करता है?

(2)

मौखिक

1. लेखक को 'रोमै रोलाँ का भारत' आद्यंत पढ़े बिना चैन क्यों नहीं मिला?
2. रोमैं रोलाँ ने लगभग अट्ठाईस बरसों के घटनाचक्र में किन-किन महान व्यक्तियों का उल्लेख किया है?
3. लेखक ने दीनबंधु ऐंड्रूज़ की किन दो विशेषताओं का उल्लेख किया है?
4. लेखक सुभाषचंद्र बोस से एकाधिक बार 'कहाँ' मिला?
5. रोमैं रोलाँ गांधी जी के संबंध में टैगौर की किस बात को लेकर विस्मित और खिन्न थे?
6. रोमैं रोलाँ को गांधी जी से किस कारण निराशा हुई थी?

लिखित

1. सुभाषचंद्र बोस में आए किस परिवर्तन से लेखक को रोमैं रोलाँ के क्षुब्ध होने की संभावना लगती है?
2. रोमैं रोलाँ की कौन-सी बातें गांधी जी के प्रति उनके झुकाव को दर्शाती हैं?

(3)

मौखिक

1. स्कूल शिक्षक से लेखक का परिचय किस प्रकार हुआ था?
2. लेखक की दृष्टि में किस दुःख से बढ़कर और कोई दुःख नहीं हो सकता?

लिखित

1. किस दृष्टांत के आधार पर लेखक ने सत्य को कल्पित कथाओं से अधिक आश्चर्यजनक और विचित्र माना है?

2. मास्टर जी के बौद्धिक स्तर का परिचय क्यों नहीं मिल पाता था?
3. 'बहुत नीचे के स्तर पर पूरी ज़िंदगी गुज़ार देने को अभिशप्त यह व्यक्ति आखिर किस पाताल-स्रोत से अपनी जिजीविषा और मानसिक संतुलन खींच पाता होगा।' आशय स्पष्ट कीजिए।
4. लेखक मास्टर जी की किस जानकारी से दंग रह गया?
5. स्कूल शिक्षक ने ऐसी कौन-सी घटना सुनाई जिसमें दान देने वालों ने स्वयं को धन्य समझा?
6. लेखक के वर्णन से स्कूल शिक्षक का कैसा व्यक्तित्व उभरकर आया है?

(4)

मौखिक

1. लेखक को निराला की टिप्पणियों ने क्यों चौंका दिया?

लिखित

1. लेखक किन-किन बातों को परस्पर विरोधी मानते हैं?
2. दल के अयोग्य व्यक्ति और यथार्थ साहित्य-निर्माता की स्थितियों में अंतर स्पष्ट कीजिए।
3. जनता क्यों सत्य रहस्य से अज्ञात रहती है?
4. निराला के अनुसार जनता की दूसरों पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति का साहित्य पर क्या प्रभाव पड़ रहा है?

भाषा-अध्ययन

1. निम्नलिखित शब्दों में उपसर्ग और प्रत्यय लगे हैं। कुछ शब्दों में उपसर्ग और प्रत्यय दोनों लगे हुए हैं और कुछ शब्दों में दो-दो प्रत्यय भी। इन उपसर्गों और प्रत्ययों को अलग-अलग कीजिए– झुँझलाहट, कृपालु, निरपवाद, अप्रत्याशित, तात्कालिकता, बेबाक, विभाग, सांस्कृतिक, अविश्वसनीयता, साहित्यिक
2. निम्नलिखित वाक्यों में से विधानवाचक, प्रश्नवाचक, निषेधवाचक, विस्मयवाचक और इच्छावाचक वाक्य छाँटिए –

   (क) नहीं सर, हिंदी में कोई इस्कोप नहीं है।

(ख) सर, आपकी कृपा चाहिए।

(ग) मीराबेन को उन्होंने गांधी जी से मिलने की प्रेरणा दी है—उन्हें ईसा का दूसरा अवतार बताते हुए।

(घ) क्या रोलाँ सुभाष बोस के इस रूपांतरण से विचलित और क्षुब्ध हैं?

(ङ) कब पढ़ा होगा उन्होंने यह सब!

योग्यता-विस्तार

1. रोमैं रोलाँ ने भारत की जिन महान विभूतियों का उल्लेख किया है, उनके बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त करके उसपर कक्षा में चर्चा कीजिए।
2. अपने परिवेश से किसी ऐसे व्यक्ति के विषय में कक्षा को जानकारी दीजिए, जो अद्भुत व्यक्तित्व का धनी होते हुए भी प्रसिद्धि प्राप्त नहीं कर सका।
3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है – "मनुष्य को परमुखापेक्षिता से निकालना साहित्य का लक्ष्य है।" – आज का साहित्य अपने इस मूल उद्देश्य की पूर्ति से भटक रहा है। इस स्थिति पर कक्षा में चर्चा कीजिए।
4. सामान्यतः डायरी विधा के निम्नलिखित तत्त्व माने जाते हैं –

   (क) तिथि और स्थान का उल्लेख

   (ख) दिन विशेष में घटित महत्त्वपूर्ण घटना/घटनाओं का वर्णन और उनपर डायरी लेखक की अपनी निजी प्रतिक्रिया

   (ग) आत्मकथात्मक शैली

   (घ) वैयक्तिकता

इन तत्त्वों को ध्यान में रखते हुए एक सप्ताह के दौरान अपने साथ घटित घटनाओं पर प्रतिदिन डायरी लिखिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

पिंड छोड़ना : पीछा छोड़ना

रोमैं रोलाँ : विश्वप्रसिद्ध फ्रांसीसी साहित्यकार और विचारक, मानवतावादी दृष्टिकोण के पोषक

आनंद कुमारस्वामी : एक प्रसिद्ध भारतीय कलामर्मज्ञ

आवाजाही : आना-जाना, आवागमन

सेतुबंध	:	पुल की तरह एक दूसरे के बीच संबंध जोड़ना
मोनोलॉग	:	एकालाप
डायलॉग	:	संवाद
रूपांतरण	:	परिवर्तन
एंटीफ़ासिस्ट अभियान	:	फ़ासिस्ट विचारधारा (हिटलर, मुसोलिनी आदि की नीतियों) के विरोध में चलाया जा रहा आंदोलन
मीराबेन	:	एक विदेशी महिला, जो गांधी जी की विचारधारा से प्रभावित होकर पूर्णतः भारतीय बन गई थीं
सुकून	:	शांति, संतोष
मर्मांतक	:	हृदय को गहरी चोट पहुँचाने वाला
अभिशप्त	:	शापग्रस्त
जिजीविषा	:	जीने की इच्छा
इल्म	:	ज्ञान, जानकारी
तादात्म्य	:	तल्लीनता, लगन
पैशन	:	अति उत्साह, तीव्र इच्छा
वेल्श मित्र	:	वेल्श देश का निवासी मित्र
केल्टिक	:	आयरलैंड की एक जाति
लिटरेचर	:	साहित्य
विदूषक	:	दूसरों का मनोरंजन करने के लिए अटपटी चेष्टा करने वाला
बेबाक	:	निडरतापूर्वक
निपटता	:	उसी रूप में
परमुखापेक्षी	:	दूसरों पर निर्भर रहने वाला

प्रेमचंद

प्रेमचंद का जन्म उत्तर प्रदेश में वाराणसी के निकट लमही नामक गाँव में सन 1880 में हुआ था। प्रारंभिक शिक्षा वाराणसी में हुई। छोटी उम्र में ही पिता की मृत्यु के कारण बचपन आर्थिक संकट में गुज़रा। उन्हें दसवीं कक्षा पास करते ही प्राइमरी स्कूल में शिक्षक बनना पड़ा। नौकरी करते हुए उन्होंने बी.ए. पास किया। इसके बाद शिक्षा-विभाग में नौकरी करते हुए वे सबडिप्टी-इंसपेक्टर-ऑफ-स्कूल्स हो गए। परंतु कुछ समय बाद उन्होंने नौकरी छोड़ दी।

सन 1920 में महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन में उन्होंने सक्रिय भाग लिया। आजीविका के लिए उन्होंने लेखन-कार्य प्रारंभ किया। उनका वास्तविक नाम धनपतराय था। 'प्रेमचंद' नाम उन्होंने लेखन के लिए अपनाया और वही प्रसिद्ध हो गया। प्रारंभ में वे उर्दू में लिखते थे। कुछ वर्षों बाद उन्होंने अपनी उर्दू रचनाएँ हिंदी में अनूदित कीं। आगे चलकर उन्होंने मूल रूप से हिंदी में ही लिखना शुरू कर दिया।

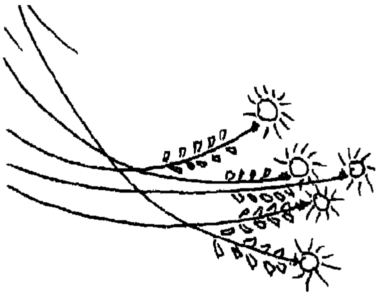
उन्होंने अपना एक छापाखाना खोला और एक मासिक पत्रिका 'हंस' का प्रकाशन प्रारंभ किया। इस पत्रिका के माध्यम से उन्होंने भारत में प्रगतिशील साहित्य के लेखन और प्रकाशन में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। प्रेमचंद आजीवन साहित्य साधना में लगे रहे। सन 1936 में उनका देहांत हो गया।

प्रेमचंद ने लगभग साढ़े तीन सौ कहानियाँ लिखी हैं, जो **मानसरोवर** नाम से आठ भागों में प्रकाशित हैं। प्रेमचंद उच्चकोटि के उपन्यासकार हैं। उनके महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं – **सेवासदन, प्रेमाश्रम, निर्मला, रंगभूमि, गोदान, गबन, कर्मभूमि, कायाकल्प** आदि। उन्होंने नाटक और निबंध भी लिखे।

प्रेमचंद का साहित्य समाज-सुधार और राष्ट्रीय भावना से प्रेरित है। वह अपने समय की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों का पूरा प्रतिनिधित्व करता है। प्रेमचंद की रचनाओं में सामंतवाद के शिकंजे में जकड़े हुए किसानों की दयनीय दशा का मार्मिक चित्रण हुआ है। उनकी रचनाओं की भावभूमि यथार्थ पर आधारित है पर वे उस यथार्थ के माध्यम से भी आदर्श का ही पोषण करते हैं।

प्रेमचंद की भाषा सरल, सहज, मुहावरेदार और पात्रानुकूल है।

पूस की रात कहानी के माध्यम से लेखक ने एक गरीब किसान की दशा का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है कि किस तरह वह पूस की ठंड में बिना किसी गरम कपड़े के अपने खेत की रखवाली करता है। असहनीय ठंड में अलाव की गरमी से बदन में आई गरमाहट के कारण वह आलस्यवश नहीं उठ पाता और खेत को नीलगायों के चरने से बचाने की कोई चेष्टा नहीं करता। अतः दूसरे दिन खेत में एक भी दाना न बचने के दुःख के बावज़ूद उसे यह सोचकर सुख मिलता है कि चाहे अब उसे साल भर मजूरी करनी पड़ेगी, पर अब उसे सरदी की रातों में जागकर खेत की रखवाली नहीं करनी पड़ेगी।



पूस की रात

(1)

हल्कू ने आकर स्त्री से कहा, "सहना आया है, लाओ, जो रुपए रखे हैं, उसे दे दूँ, किसी तरह गला तो छूटे।"

मुन्नी झाड़ू लगा रही थी। पीछे फिरकर बोली, "तीन ही तो रुपए हैं, दे दोगे तो कम्मल कहाँ से आवेगा? माघ-पूस की रात हार मे कैसे कटेगी? उससे कह दो, फ़सल पर रुपए दे देंगे। अभी नहीं।"

"हल्कू एक क्षण अनिश्चित दशा में खड़ा रहा। पूस सिर पर आ गया, कम्मल के बिना हार में रात को वह किसी तरह नहीं सो सकता। मगर सहना मानेगा नहीं, घुड़कियाँ जमाएगा, गालियाँ देगा। बला से जाड़ों मरेंगे, बला तो सिर से टल जाएगी। यह सोचता हुआ वह अपना भारी-भरकम डील लिए हुए (जो उसके नाम को झूठ सिद्ध करता था) स्त्री के समीप आ गया और खुशामद करके बोला, "ला दे-दे, बला तो छूटे। कम्मल के लिए कोई दूसरा उपाय सोचूँगा।"

मुन्नी उसके पास से दूर हट गई और आँखें तरेरती हुई बोली, "कर चुके दूसरा उपाय। ज़रा सुनूँ, कौन उपाय करोगे? कोई खैरात दे देगा कम्मल? न जाने कितनी बाकी है, जो किसी तरह चुकने ही नहीं आती। मैं कहती हूँ, तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते? मर - मर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई। बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जनम हुआ है। पेट के लिए मजूरी करो। ऐसी खेती से बाज आए। मैं रुपए न दूँगी-न दूँगी।"

हल्कू उदास होकर बोला,"तो क्या गाली खाऊँ?"

मुन्नी ने तड़पकर कहा, "गाली क्यों देगा, क्या उसका राज है?"

मगर यह कहने के साथ ही उसकी तनी हुई भौंहें ढीली पड़ गईं। हल्कू के उस वाक्य में जो कठोर सत्य था, मानो एक भीषण जंतु की भाँति उसे घूर रहा था।

उसने जाकर आले पर से रुपए निकाले और लाकर हल्कू के हाथ पर रख दिए। फिर बोली, "तुम छोड़ दो अबकी से खेती। मजूरी में सुख से एक रोटी खाने को तो मिलेगी। किसी

की धौंस तो न रहेगी। अच्छी खेती है ! मजूरी करके लाओ, वह उसी में झोंक दो, उस पर से धौंस।"

हल्कू ने रुपए लिए और इस तरह बाहर चला मानो अपना हृदय निकालकर देने जा रहा हो। उसने मजूरी से एक-एक पैसा काट-कपट कर तीन रुपए कम्मल के लिए जमा किए थे। वह आज निकले जा रहे थे। एक-एक पग के साथ उसका मस्तक अपनी दीनता के भार से दबा जा रहा था।

(2)

पूस की अँधेरी रात ! आकाश पर तारे ठिठुरते हुए मालूम होते थे। हल्कू अपने खेत के किनारे ऊख के पत्तों की एक छतरी के नीचे बाँस के खटोले पर अपनी पुरानी गाढ़े की चादर ओढ़े काँप रहा था। खाट के नीचे उसका संगी कुत्ता जबरा पेट में मुँह डाले सरदी से कूँ-कूँ कर रहा था। दो में से एक को भी नींद न आती थी।

हल्कू ने घुटनियों को गरदन में चिपकाते हुए कहा, "क्यों जबरा, जाड़ा लगता है ? कहता तो था, घर में पुआल पर लेट रह, तो यहाँ क्या लेने आए थे। अब खाओ ठंड, मैं क्या करूँ! जानते थे, यहाँ हलुवा-पूरी खाने आ रहा हूँ, दौड़े-दौड़े आगे-आगे चले आए। अब रोओ नानी के नाम को।"

जबरा ने पड़े-पड़े दुम हिलाई और अपनी कूँ-कूँ को दीर्घ बनाता हुआ एक बार जम्हाई लेकर चुप हो गया। उसकी श्वान-बुद्धि ने शायद ताड़ लिया, स्वामी को मेरी कूँ-कूँ से नींद नहीं आ रही है।

हल्कू ने हाथ निकालकर जबरा की ठंडी पीठ सहलाते हुए कहा, "कल से मत आना मेरे साथ, नहीं तो ठंडे हो जाओगे। यह पछुआ न जाने कहाँ से बरफ़ लिए आ रही है। उठूँ, फिर एक चिलम भरूँ। किसी तरह रात तो कटे ! आठ चिलम तो पी चुका। यह खेती का मज़ा है। और एक-एक भागवान ऐसे पड़े हैं, जिनके पास जाड़ा जाए तो गरमी से घबराकर भागे। मोटे-मोटे गद्दे, लिहाफ़-कम्मल। मजाल है कि जाड़े का गुज़र हो जाए। तकदीर की खूबी है ! मजूरी हम करें, मज़ा दूसरे लूटें !"

हल्कू उठा और गड्ढे में से ज़रा-सी आग निकालकर चिलम भरी। जबरा भी उठ बैठा।

हल्कू ने चिलम पीते हुए कहा, "पिएगा चिलम, जाड़ा तो क्या जाता है, ज़रा मन बहल जाता है।"

जबरा ने उसके मुँह की ओर प्रेम से छलकती हुई आँखों से देखा।

हल्कू, "आज और जाड़ा खा ले। कल से मैं यहाँ पुआल बिछा दूँगा। उसी में घुसकर बैठना, तब जाड़ा न लगेगा।"

जबरा ने अगले पंजे उसकी घुटनियों पर रख दिए और उसके मुँह के पास अपना मुँह ले गया। हल्कू को उसकी गरम साँस लगी।

चिलम पीकर हल्कू फिर लेटा और निश्चय करके लेटा कि चाहे कुछ हो अबकी सो जाऊँगा, पर एक ही क्षण में उसके हृदय में कंपन होने लगा। कभी इस करवट लेटता, कभी उस करवट, पर जाड़ा किसी पिशाच की भाँति उसकी छाती को दबाए हुए था।

जब किसी तरह न रहा गया तो उसने जबरा को धीरे से उठाया और उसके सिर को थपथपाकर उसे अपनी गोद में सुला लिया। कुत्ते की देह से जाने कैसी दुर्गंध आ रही थी, पर वह उसे अपनी गोद से चिपटाए हुए ऐसे सुख का अनुभव कर रहा था, जो इधर महीनों में उसे न मिला था। जबरा शायद समझ रहा था कि स्वर्ग यही है, और हल्कू की पवित्र आत्मा में तो उस कुत्ते के प्रति घृणा की गंध तक न थी ! अपने किसी अभिन्न मित्र या भाई को भी वह इतनी ही तत्परता से गले लगाता। वह अपनी दीनता से आहत न था, जिसने आज उसे इस दशा को पहुँचा दिया। नहीं, इस अनोखी मैत्री ने जैसे उसकी आत्मा के सब द्वार खोल दिए थे और उसका एक-एक अणु प्रकाश से चमक रहा था।

सहसा जबरा ने किसी जानवर की आहट पाई। इस विशेष आत्मीयता ने उसमें एक नई स्फूर्ति पैदा कर दी थी, जो हवा के ठंडे झोंकों को तुच्छ समझती थी। वह झपटकर उठा और छतरी के बाहर आकर भूँकने लगा। हल्कू ने उसे कई बार चुमकारकर बुलाया, पर वह उसके पास न आया। हार में चारों तरफ़ दौड़-दौड़ भूँकता रहा। एक क्षण के लिए आ भी जाता तो तुरंत ही फिर दौड़ता। कर्तव्य उसके हृदय में अरमान की भाँति उछल रहा था।

(3)

एक घंटा और गुज़र गया। रात ने शीत को हवा से धधकाना शुरू किया। हल्कू उठ बैठा और दोनों घुटनों को छाती से मिलाकर सिर को उसमें छिपा लिया। फिर भी ठंड कम न हुई। ऐसा जान पड़ता था, सारा रक्त जम गया है, धमनियों में रक्त की जगह हिम बह रहा है। उसने झुककर आकाश की ओर देखा, अभी कितनी रात बाकी है। सप्तर्षि अभी आकाश में आधे भी नहीं चढ़े। ऊपर आ जाएँगे तब कहीं सबेरा होगा। अभी पहर भर से ऊपर रात है।

हल्कू के खेत से कोई एक गोली के टप्पे पर आमों का बाग था। पतझड़ शुरू हो गई थी। बाग में पत्तियों का ढेर लगा हुआ था। हल्कू ने सोचा, चलकर पत्तियाँ बटोरूँ और उन्हें जलाकर खूब तापूँ। रात को कोई मुझे पत्तियाँ बटोरते देखे तो समझे कोई भूत है। कौन जाने कोई जानवर ही छिपा बैठा हो, मगर अब तो बैठे नहीं रहा जाता।

उसने पास के अरहर के खेत में जाकर कई पौधे उखाड़ लिए और उनका एक झाड़ू बनाकर हाथ में सुलगता हुआ उपला लिए बगीचे की तरफ़ चला। जबरा ने उसे आते देखा तो पास आया और दुम हिलाने लगा।

हल्कू ने कहा, "अब तो नहीं रहा जाता जबरू ! चलो, बगीचे में पत्तियाँ बटोरकर तापें! टाँटे हो जाएँगे, तो फिर आकर सोएँगे। अभी तो रात बहुत है।"

जबरा ने कूँ-कूँ करके सहमति प्रकट की और आगे-आगे बगीचे की ओर चला।

बगीचे में खूब अँधेरा छाया हुआ था और अंधकार में निर्दय पवन पत्तियों को कुचलता हुआ चला जाता था। वृक्षों से ओस की बूँदें टप-टप नीचे टपक रही थीं।

एकाएक एक झोंका मेंहदी के फूलों की खुशबू लिए हुए आया।

हल्कू ने कहा," कैसी अच्छी महक आई जबरू ! तुम्हारी नाक में भी सुगंध आ रही है? "

जबरा को कहीं ज़मीन पर एक हड्डी पड़ी मिल गई थी। उसे चिचोड़ रहा था।

हल्कू ने आग ज़मीन पर रख दी और पत्तियाँ बटोरने लगा। ज़रा देर में पत्तियों का एक ढेर लग गया। हाथ ठिठुरे जाते थे। नंगे पाँव गले जाते थे। और वह पत्तियों का पहाड़ खड़ा कर रहा था। इसी अलाव में वह ठंड को जलाकर भस्म कर देगा।

थोड़ी देर में अलाव जल उठा। उसकी लौ ऊपरवाले वृक्ष की पत्तियों को छू-छूकर भागने लगी। उस स्थिर प्रकाश में बगीचे के विशाल वृक्ष ऐसे मालूम होते थे, मानो उस अथाह अंधकार को अपने सिरों पर सँभाले हुए हों। अंधकार के उस अनंत सागर में यह प्रकाश एक नौका के समान हिलता, मचलता हुआ जान पड़ता था।

हल्कू अलाव के सामने बैठा आग ताप रहा था। एक क्षण में उसने दोहर उतारकर बगल में दबा ली और दोनों पाँव फैला दिए, मानो ठंड को ललकार रहा हो, तेरे जी में जो आए सो कर। ठंड की असीम शक्ति पर विजय पाकर वह विजय-गर्व को हृदय में छिपा न सकता था।

उसने जबरा से कहा, "क्यों जब्बर, अब ठंड नहीं लग रही है?"

जब्बर ने कूँ-कूँ करके मानो कहा, "अब क्या ठंड लगती ही रहेगी!"

"पहले से यह उपाय न सूझा, नहीं इतनी ठंड क्यों खाते।"

जबरा ने पूँछ हिलाई।

"अच्छा आओ इस अलाव को कूद कर पार करें। देखें, कौन निकल जाता है। अगर जल गए बच्चा, तो मैं दवा न करूँगा।"

जबरा ने उस अग्निराशि की ओर कातर नेत्रों से देखा।

"मुन्नी से कल न कह देना, नहीं तो लड़ाई करेगी।"

यह कहता हुआ वह उछला और अलाव के ऊपर से साफ़ निकल गया ! पैरों में ज़रा लपट लगी, पर वह कोई न थी। जबरा आग के गिर्द घूमकर उसके पास आ खड़ा हुआ।

हल्कू ने कहा, "चलो-चलो, इसकी सही नहीं। ऊपर से कूदकर आओ।" वह फिर कूदा और अलाव के इस पार आ गया।

(4)

पत्तियाँ जल चुकी थीं। बगीचे में फिर अँधेरा छाया था। राख के नीचे कुछ-कुछ आग बाकी थी, जो हवा का झोंका आ जाने पर ज़रा जाग उठती थी, पर एक क्षण में फिर आँखें बंद कर लेती थी।

हल्कू ने फिर चादर ओढ़ ली और गरम राख के पास बैठा हुआ एक गीत गुनगुनाने लगा। उसके बदन में गरमी आ गई थी, पर ज्यों-ज्यों शीत बढ़ती जाती थी, उसे आलस्य दबाए लेता था।

जबरा ज़ोर से भूँककर खेत की ओर भागा। हल्कू को ऐसा मालूम हुआ कि जानवरों का एक झुंड उसके खेत में आया है। शायद नीलगायों का झुंड था। उनके कूदने-दौड़ने की आवाज़ें कान में साफ़ आ रही थीं। फिर ऐसा मालूम हुआ कि वह खेत में चर रही हैं। उनके चबाने की आवाज़ चर-चर सुनाई देने लगी।

उसने दिल में कहा—नहीं, जबरा के होते कोई जानवर खेत में नहीं आ सकता। नोच ही डाले। मुझे भ्रम हो रहा है। कहाँ ! अब तो कुछ नहीं सुनाई देता। मुझे भी कैसा धोखा हुआ !

उसने ज़ोर से आवाज़ लगाई, "जबरा, जबरा।"

जबरा भूँकता रहा। उसके पास न आया।

फिर खेत के चरे जाने की आहट मिली। अब वह अपने को धोखा न दे सका। उसे अपनी जगह से हिलना ज़हर लग रहा था। कैसा दंदाया हुआ बैठा था। इस जाड़े-पाले में खेत में जाना, जानवरों के पीछे दौड़ना असूझ जान पड़ा। वह अपनी जगह से न हिला।

उसने ज़ोर से आवाज़ लगाई, "लिहो-लिहो ! लिहो !!"

जबरा भूँक उठा। जानवर खेत चर रहे थे। फ़सल तैयार है। कैसी अच्छी खेती थी, पर ये दुष्ट जानवर उसका सर्वनाश किए डालते हैं।

हल्कू पक्का इरादा करके उठा और दो-तीन कदम चला, पर एकाएक हवा का ऐसा ठंडा, चुभनेवाला, बिच्छू के डंक का-सा झोंका लगा कि वह फिर बुझते हुए अलाव के पास आ बैठा और राख को कुरेदकर अपनी ठंडी देह को गरमाने लगा।

जबरा अपना गला फाड़े डालता था। नीलगाएँ खेत का सफ़ाया किए डालती थीं। और हल्कू गरम राख के पास शांत बैठा हुआ था। अकर्मण्यता ने रस्सियों की भाँति उसे चारों तरफ़ से जकड़ रखा था।

उसी राख के पास गरम ज़मीन पर वह चादर ओढ़कर सो गया।

सवेरे जब उसकी नींद खुली, तब चारों तरफ़ धूप फैल गई थी। और मुन्नी कह रही थी, "क्या आज सोते ही रहोगे? तुम यहाँ आकर रम गए और उधर सारा खेत चौपट हो गया।"

हल्कू ने उठकर कहा, "क्या तू खेत से होकर आ रही है?"

मुन्नी बोली, "हाँ, सारे खेत का सत्यानाश हो गया। भला ऐसा भी कोई सोता है ! तुम्हारे यहाँ मड़ैया डालने से क्या हुआ? "

हल्कू ने बहाना किया, "मैं मरते-मरते बचा, तुझे अपने खेत की पड़ी है। पेट में ऐसा दरद हुआ कि मैं ही जानता हूँ।"

दोनों फिर खेत की डाँड़ पर आए। देखा, सारा खेत रौंदा पड़ा हुआ है, और जबरा मड़ैया के नीचे चित लेटा है, मानो प्राण ही न हों।

दोनों खेत की दशा देख रहे थे। मुन्नी के मुख पर उदासी छाई थी। पर हल्कू प्रसन्न था।

मुन्नी ने चिंतित होकर कहा, "अब मजूरी करके मालगुज़ारी भरनी पड़ेगी।"

हल्कू ने प्रसन्न मुख से कहा, "रात की ठंड में यहाँ सोना तो न पड़ेगा।"

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. हल्कू रुपए देकर किससे अपना पीछा छुड़ाना चाहता था?
2. हल्कू की पत्नी रुपए क्यों नहीं देना चाहती थी?
3. मुन्नी ने हल्कू को खेती छोड़ देने के लिए क्यों कहा?
4. सहना से अपना पिंड छुड़ाने के लिए हल्कू ने क्या निश्चय किया?
5. हल्कू किस आधार पर यह अनुमान लगा रहा था कि रात अभी बाकी है?
6. हल्कू नीलगाय के द्वारा खेत चरे जाने की आवाज़ सुनकर भी खेत बचाने के लिए क्यों नहीं उठा? इस संबंध में निम्नलिखित में से सही कारण के सामने सही (✔) और गलत के सामने गलत (✘) का चिह्न लगाइए–

   (क) उसे पूर्ण विश्वास था कि जबरा खेत की रक्षा कर लेगा ।

   (ख) उसे शहर में नौकरी मिलने वाली थी ।

   (ग) वह अलाव की गरमाहट से अलग नहीं होना चाहता था ।

   (घ) वह खेती के काम से छुटकारा चाहता था ।

   (ङ) खेती करने में उसकी कोई रुचि नहीं थी।

लिखित

1. सहना को रुपए न देने की ज़िद पर अड़ी मुन्नी ने एकाएक रुपए निकालकर क्यों दे दिए?
2. "तो क्या गाली खाऊँ?" हल्कू के इस कथन में पाठक को किस कठोर सत्य के दर्शन होते हैं?
3. सहना को रुपए देते समय हल्कू के मन पर क्या बीत रही थी?
4. हल्कू और जबरा की बातचीत उनके आत्मीय संबंध को दर्शाती है। सोदाहरण टिप्पणी कीजिए।
5. पूस की रात काटे नहीं कट रही थी। हल्कू की कौन-कौन सी प्रतिक्रियाएँ इस तथ्य की पुष्टि करती हैं?
6. हल्कू ने खेत की रखवाली न कर पाने पर मुन्नी के सामने क्या बहाना प्रस्तुत किया?
7. जिस जबरा की शक्ति पर हल्कू को अत्यंत विश्वास था, वह मड़ैया के नीचे चित्त क्यों पड़ा था?
8. चरे हुए खेत की दशा देखकर मुन्नी और हल्कू पर क्या-क्या प्रतिक्रिया हुई और क्यों?

भाषा-अध्ययन

1. निम्नलिखित वाक्यों को पढ़िए और समझिए–

(क) कर चुके दूसरा उपाय ——▶ दूसरा उपाय कर चुके।
(ख) कोई खैरात दे देगा कम्मल ——▶ कोई कम्मल खैरात में दे देगा।
(ग) तुम छोड़ दो अबकी से खेती ——▶ अब से तुम खेती छोड़ दो।
(घ) अब रोओ नानी के नाम को ——▶ अब नानी के नाम को रोओ।

ऊपर बाईं ओर कुछ वाक्य दिए गए हैं जिनमें बोलचाल का स्वाभाविक रूप है। किंतु इनका पदक्रम व्याकरणिक दृष्टि से मान्य पदक्रम से भिन्न है। प्रत्येक वाक्य के सामने व्याकरणिक दृष्टि से पदक्रम का मान्य रूप दिया गया है। इस पाठ से बोलचाल के इसी प्रकार के चार वाक्य छाँटिए और उन्हें मान्य पदक्रम में लिखिए।

2. निम्नलिखित गद्यांश में सही विराम चिह्न लगाइए–

सवेरे जब उसकी नींद खुली तब चारों तरफ धूप फैल गई थी मुन्नी कह रही थी क्या आज सोते ही रहोगे तुम यहाँ आकर रम गए और उधर सारा खेत चौपट हो गया

हल्कू ने उठकर कहा क्या तू खेत से होकर आ रही है मुन्नी बोली हाँ सारे खेत का सत्यानाश हो गया भला ऐसा भी कोई सोता है तुम्हारे यहाँ मड़ैया डालने से क्या हुआ

योग्यता-विस्तार

1. लेखक ने अनेक सटीक विशेषणों के प्रयोग से पूस की रात की सरदी को अत्यंत कुशलता से उभारा है । उपयुक्त विशेषणों का प्रयोग करते हुए जेठ की तपती दोपहरी का वर्णन कीजिए ।
2. 'पूस की रात' कहानी निर्धन भारतीय किसान की व्यथा कथा है । प्रेमचंद की कुछ अन्य ऐसी रचनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त कीजिए जो उस वर्ग की ऐसी ही दशा को उभारती हों ।

शब्दार्थ और टिप्पणी

हार : खेत
बला से : भले ही
बला टलना : परेशान करने वाले से छुटकारा पाना
खैरात : मुफ़्त में दान-पुण्य
धौंस : धमकी
ऊख : गन्ना
गाढ़े की चादर : हाथ से बुने मोटे कपड़े की बनी चादर
पुआल : पके हुए धान के डंठल जिनसे दाने अलग कर लिए गए हों
श्वान : कुत्ता
पछुआ : पश्चिम की ओर से आने वाली हवा
आहत : घायल
गोली के टप्पे पर : उतनी दूर जितनी दूर खेलते हुए कंचे की गोली जा सकती है (कुछ ही दूरी पर)
टाँटे : ताते (गरम)
अलाव : तापने के लिए जलाई गई आग
दोहर : एक तरह की दोहरी चादर जिसमें गोट लगाई जाती है
दंदाया : गरमाया
मड़ैया : खेत में रखवाली के लिए बनाया गया झोंपड़ा
डाँड़ : खेत की सीमा, मेंड़
मालगुज़ारी : भूमि कर

भगवतशरण उपाध्याय

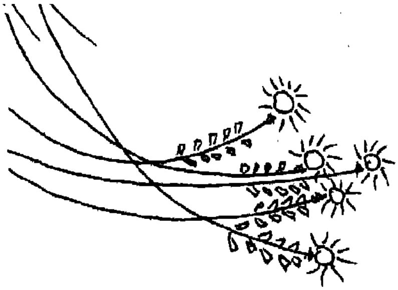
भगवतशरण उपाध्याय का जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया ज़िले के उजियार ग्राम में सन 1910 में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा गाँव के स्कूल में प्राप्त की। काशी हिंदू विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम.ए. किया। कालिदास के साहित्य पर शोध कर उन्होंने पीएच.डी. की उपाधि अर्जित की। कुछ दिनों तक विश्वविद्यालय की शोध-पत्रिका का संपादन करने के बाद उन्होंने पुरातत्त्व-विभाग में कार्य करना प्रारंभ किया। लखनऊ और इलाहाबाद के संग्रहालयों में क्यूरेटर के रूप में कई वर्षों तक काम किया। तत्पश्चात राजस्थान के पिलानी बिड़ला संस्थान में अध्यापन करने लगे। वे काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा से प्रकाशित 'हिंदी-विश्व-कोश' के कई वर्षों तक संपादक रहे। उज्जैन के विक्रम विश्वविद्यालय में इतिहास के प्रोफ़ेसर के रूप में भी काम किया।

उपाध्याय जी ने यूरोप, अमेरिका, चीन और रूस आदि देशों की यात्राएँ कीं और विस्तृत भ्रमण-वृत्तांत लिखे। इनकी लिखी पुस्तकों की संख्या सौ से भी अधिक है। उनमें से कुछ प्रमुख पुस्तकें हैं –

विश्व साहित्य की रूप-रेखा, संघर्ष, गर्जन, ग्रामीणों की छाया में, वो दुनिया, कलकत्ते से पीकिंग, लाल चीन, सागर की लहरों पर, कालिदास का भारत, खून के छींटे इतिहास के पन्नों पर, भारतीय नदियों की कहानी, सांस्कृतिक निबंध, इतिहास के रत्न, मैंने देखा, मिट्टी का महत्त्व, प्राचीन भारत के निर्माता आदि।

उपाध्याय जी एशिया और भारत की संस्कृति के व्याख्याकार और विचारक के रूप में प्रसिद्ध हैं। इसी आधार पर उन्हें भारत का राजदूत बनाकर मॉरिशस भेजा गया। इसी पद पर काम करते हुए सन 1982 में वे दिवंगत हुए।

संकलित पाठ **ठूँठा आम** एक ललित निबंध है, जिसमें आम के एक सूखे वृक्ष के माध्यम से लेखक ने संसार के उपयोगितावादी दृष्टिकोण का बड़ा ही मार्मिक एवं भावपूर्ण विवेचन किया है। एक समय के सरस, सघन आम के वृक्ष के कालांतर में रसहीन, छायाहीन, पत्रहीन बनने पर उसकी मनोव्यथा का वर्णन निश्चय ही हृदय को छू लेता है, लेकिन नैराश्य के इन क्षणों में भी लेखक यह विश्वास जगाता है कि पतझड़ आ गया तो क्या, वसंत भी तो दूर नहीं। यही जीवनक्रम है।



ठूँठा आम

वह ठूँठा आम, जो चौराहे पर खड़ा है, सदा से ठूँठा नहीं है। दिन थे, जब वह हरा-भरा था और उस जनसंकुल चौराहे पर अपनी छतनारी डालियों से बटोहियों की थकान अनजाने दूर करता था।

पर मैंने उसे सदा ठूँठ ही देखा है। पत्रहीन, शाखाहीन, निरवलंब, जैसे पृथ्वी रूपी आकाश से सहसा निकलकर अधर में ही टँग गया हो। रात में वह काले भूत-सा लगता है, दिन में उसकी छाया इतनी गहरी नहीं हो पाती जितना काला उसका जिस्म है और अगर चितेरे को छायाचित्र बनाना हो तो शायद उसका-सा 'अभिप्राय' और न मिलेगा। प्रचंड धूप में भी उसका सूखा शरीर उतनी ही गहरी छाया ज़मीन पर डालता जैसे रात की उजियारी चाँदनी में।

मैंने उसे सदा ठूँठ ही देखा है। सही, मेरे जीवन के साल कुछ बे-हिसाब लंबे नहीं, फिर भी कुछ कम भी नहीं है और कम-से-कम दशकों की परंपरा तो उनमें है ही। और जब से होश सँभाला है, जब से आँख खोली है, देखने का अभ्यास किया है, तब से बराबर मुझे उसका निस्पंद, नीरस, अर्थहीन शरीर ही दीख पड़ा है। पर पिछली पीढ़ी के जानकार कहते हैं कि एक ज़माना था जब पीपल और बरगद भी उसके सामने शरमाते थे और उसके पत्तों से, उसकी टहनियों और डालों से टकराती हवा की सरसराहट दूर तक सुनाई पड़ती थी। पर आज वह नीरव है, उस चौराहे का जवाब जिसपर उत्तर-दक्खिन, पूरब-पश्चिम चारों ओर की राहें आ मिलती हैं और जिनके सहारे जीवन अविरल बहता है। जिसने कभी जल को जीवन की संज्ञा दी, उसने निश्चय जाना होगा कि प्राणवान जीवन भी जल की ही भाँति विकल, अविरल बहता है। सो प्राणवान जीवन, मानव संस्कृति का उल्लास-उपहार लिए उन चारों राहों की संधि पर मिलता था जिसके एक कोण में उस प्रवाह से मिल एकांत शुष्क आज वह ठूँठ खड़ा है। उसके अभाग्यों की परंपरा में संभवतः एक ही सुखद अपवाद है—उसके अंदर का स्नेहरस सूख जाने से संज्ञा का लोप हो जाना। संज्ञा लुप्त हो जाने से कष्ट की अनुभूति कम हो जाती है। सो, उस ठूँठ को सर्वथा अभागा तो नहीं कहा जा सकता।

दूर-दूर के वणिक चारों राहों से अपना सौदा लिए आते-जाते हैं। आस-पास के पेड़ों की सघन छाया में उनके ऊँट, उनकी गाड़ियाँ खड़ी रहती हैं और उस सूखे आम से जब-तब बस कोई पागल कभी लिपट जाता है। कोई साँड़ कभी उसे सींग मार देता है, कोई सियार उसकी सूखी उखड़ी जड़ों में बैठ रात में रो उठता है।

पर जैसा जानकारों ने बताया, कभी वह पेड़ हरा था, उसकी जड़ें धरती की नरम-नरम मिट्टी से दबी थीं और उसकी छतनार डालें आकाश में ऐसी फैली हुई थीं जैसे विशाल पक्षी के डैने। और उन डालियों के कोटरों में अनगिनत घोंसले थे। पनाह के नीड़, बसेरे। दूर बियाबाँ से लौटकर पक्षी उनमें बसेरा करते, रात की भीगी गहराई में खोकर सुबह दिशाओं की ओर उड़ जाते।

और मैं जो उस पेड़ के ठूँठपन पर कुछ दुखी हो चुप हो जाता तो वह जानकार कहता, उसने वह कथा कितनी ही बार कही, आँखों देखी बात है, इस पेड़ की सघन छाया में कितने बटोहियों ने गए प्राण पाए हैं, कितने ही सूखे हरे हुए हैं। सुनो उसकी कथा, सारी बताता हूँ और उसने बताया, जलती दुपहरी में मरीचिका की नाचती आग के बीच यह पेड़ हरा-भरा झूमता पत्तों के विस्तृत ताज को सिर से उठाए। आँधी और तूफ़ान में उसकी डालें एक दूसरे से टकरातीं, टहनियाँ एक-दूसरे में गुँथ जातीं और जब तपी धरती बादलों की झरती झींसी रोम-रोम से पीती और रोम-रोम सजीव कर उनमें से लता प्रतानों के अंकुर फोड़ देती तब पेड़ जैसे मुसकराता और बढ़ती लताओं की डाली रूपी भुजाओं से जैसे उठाकर भेंट लेता। उस विशाल तरु में तब बड़ा रस था उसकी टहनी-टहनी,डाली-डाली, पोर-पोर में रस था और उसे छलका-छलका वह लता-वल्लरियों को निहाल कर देता। अनंत लताएँ, अनंत वल्लरियाँ पावस में उसके अंग-अंग से, उसकी फूटती संधियों से लिपटी रहतीं और देखने वाले बस उसके सुख को देखते रह जाते।

और मेरा वह जानकार बुज़ुर्ग एक लंबी साँस लेकर थका-सा कह चलता कि तुम क्या जानो, जिसने केवल पावस और वसंत ही देखे हैं, निदाघ और पतझड़ न देखे, केवल अंकुर और कोपलें ही फूटती देखी हैं, सूखती साँस न देखी, पीले झड़ते पत्ते न देखे? फिर एक दिन, एक साल कुछ ऐसा हुआ कि जैसे सब कुछ बदल गया। जहाँ वसंत के आते ही पत्रों के-से कोमल पत्ते उस वृक्ष की टहनियों से हवा में डोलने लगते थे, वहाँ उस साल फिर वे पत्ते न डोले, वे टहनियाँ सूख चलीं। दूर दिशाओं से आकर उस पेड़ के नीड़ों में विश्राम

करने वाले पक्षी उसकी छतनार डालों से उड़ गए। जहाँ अनंत-अनंत कोयलें कूका करती थीं। बौराई फुनगियों पर भौंरों की काली पंक्तियाँ मँडराया करती थीं , सहसा उस पेड़ का रस सूख चला।

और जैसे उसे बसेरा लेने वाले पक्षी छोड़ चले, जैसे कूकती कोयलें, टेरते पपीहे, मँडराते भौंरे उसके अनजाने हो गए। वैसे ही लता वल्लरियाँ उसके स्कंध देश से, उसकी फैली मज़बूत डालियों से, उसकी मदमाती झूमती टहनियों से धीरे-धीरे उतर गईं, कुछ सूख गईं, मर गईं। उस लता-संपदा के बीच फिर भी एक मधुर मदिर पुष्पवती पराग भरी वल्लरी उससे लिपटी रही, और ऐसी कि लगता कि प्रकृति के परिवर्तन उस पर असर नहीं करते। वासंती जैसे सारी त्रुटियों में रसभरी वासंती बनी रहती। सहकार वृक्ष से लिपटी वल्लरियों की उपमा कवियों ने अनेकानेक दी हैं। पर वह तो साहित्य और कल्पना की बात थी, उसे कभी चेता न था, पर चेता मैंने उसे अब, जब उस एकांत वल्लरी को उस प्रकांड तरु से लिपटे पाया। लगा जैसे काल ठमक गया है, जैसे सदियाँ एक के बाद एक ज़माने की राह उतरती जाएँगी, पर वल्लरी पेड़ से अलग न होगी, दोनों के संबंध में व्यवधान न होगा। और उन्हें एक-दूसरे से लिपटे जो कोई देखता उनके चिर विलास का, चिर सुख का, कभी अंत न होने वाले संबंध का आशीर्वाद देता।

पर विधाता से किसी का सुख कब देखा गया? वल्लरी वृक्ष से अलग हो गई, वृक्ष सूख गया, तुम्हारे सामने आकाश का परिकर बाँधे वह खड़ा है।

पर वल्लरी? वल्लरी सूखी नहीं, मात्र उस वृक्ष से हट गई। उस दूसरे वृक्ष को देखते हो न? उस तनवान, प्राणवान, पुलकित रसाल को, जिस पर आज भी कोयल कूकती है, पपीहे टेरते हैं, भौंरे मँडराते हैं। उसी तरु से वह वल्लरी अब जा लिपटी है।

यह रसाल जीवन के शैशव से निकलकर तारुण्य के उल्लास से उलझा हुआ है, उसके जीवन के पोर-पोर से सरकती हुई वह वल्लरी उससे जा गुँथी है। एक दिन वह वल्लरी उस वृक्ष-पुरातन की डालियों से उसकी जड़ों में जा गिरी और उसके पोर-पोर चढ़ती सारे तन पर उल्लास से छा गई, उसके मस्तक पर अपना मदिर मकरंद बिछा दिया और अब वह उसे सर्वतः घेरकर उसकी टहनी-टहनी छाए घूमती है।

और यह अभिराम नूतन वृक्ष?

उस ठूँठ की तरफ़ देखो जिसकी काया में रस कहीं दीखता नहीं। पर एक दिन जब उससे रस चूता था, एक दिन जब वह रसाल था, जब सुए उसके खट्टे आमों को अपनी तीखी चोंचों की चोट से मीठा कर देते, तब अकाल अनेक फल पेड़ से टपक पड़ते। उन्हीं में से पके सूखे फल की गुठली एक दिन आँधी से थोड़ी दूर पर जा गिरी। पावस की फुहारों ने मिट्टी ऊपर बिछाई और बरसात के बीच धीरे-धीरे उस मिट्टी से एक अंकुर फूट पड़ा। उसकी पीली-सफ़ेद एक सूत की जड़ मिट्टी के ऊपर आ गई थी। और उससे भी ऊपर दो दालें थीं जैसे गुठली की दो रानें, और ऊपर एक लाल अकेला नरम पल्लव था।

समय बीतता गया। ऋतुओं का संचरण अपने वृत्त में घूमने लगा और जैसे-जैसे ऋतुएँ अपने वृत्त में घूमतीं वैसे उस अंकुर में साँस पड़ती जाती। दूर का वृक्ष उस बढ़ते अंकुर को जैसे धूप में अपनी छाया देता, पाले में अपनी छाया से उसकी सरदी का निवारण करता और उसके तनते तन को देख जैसे अघा उठता।

और एक दिन जब अपनी गुठली से निकले उस अंकुर पर वृक्ष ने संतोष की निगाह डाली, उसके ऊर्जस्वित उन्नत काय को देख वह उल्लसित हुआ, तभी सहसा उसकी दृष्टि उस वल्लरी पर जा पड़ी जो उस तरुण वृक्ष के रोम-रोम को घेरे, उसके नए छतनार मस्तक के ऊपर एक साँस झूम रही थी। वृक्ष की दृष्टि सहसा लौटी, अपने तन पर पड़ी और उसे उसने सूना पाया—उसकी चिरंतन वल्लरी वहाँ न थी।

उसके सारे बचे पत्ते सहसा मुरझा गए, सहसा पीले पड़ गए , एक-एक कर नीचे गिर गए। टहनियाँ डालों में समा गईं। डालें जैसे तने में खो गईं। तने को सँभालने के लिए जड़ें मिट्टी के भीतर से उभर आईं और तब से वह महाकाय तरु जिसके नीड़ों में अनंत स्नेह पलता था, ठूँठ हो गया और आज युगों से बहते जीवन के चौराहे पर वह बदलती परिस्थितियों का मूर्तिमान त्रास बना चुपचाप खड़ा है। वृक्ष जड़ हो गया है, आज निस्पंद है, निरभिलाष, सुन्न।

"पर एक बात कहूँ? मानोगे?" जानकार ने पूछा।

कहा, "मानूँगा।" भला मानता कैसे नहीं, बुज़ुर्ग की कड़ुआई आँखें अब भी बता रही थीं कि उसकी कथा का अक्षर-अक्षर सही है, फिर संदेह को स्थान कहाँ था? कहा, "मानूँगा बोलो।"

अद्भुत भाव-संज्ञा से पुलकित होता-सा बुज़ुर्ग कहता, "वृक्ष सूख गया है, कहते हैं, निर्जीव है, पर मैंने कुछ देखा है, और जो देखा है वह बस देखने की बात है, कहने की नहीं।

जब नवतरु वसंत के निरालस रस वितान में अँगड़ाती हुई अपनी वासंती वल्लरी को अभिनव तरुण मृदुल प्यार से भेंटता है तब जैसे इस ठूँठे पेड़ में सहसा साँस पड़ जाती है, और मैंने देखा है उसकी एक शिरा आज भी हरी है। उठो, तुम भी देखो मधु की इस दहकती रजनी में जब नवतरु वल्लरी के पाश में बँधा अँगड़ा रहा है वह शिरा निश्चय हरी दीख पड़ेगी- उठो, देखो।"

उठा, पास जाकर मैंने देखा, बुज़ुर्ग की उँगली की सीध में सूखे पेड़ के अंतराल में एक व्यंजित शिरा जैसे हरी हो आई थी, पन्ने की-सी हरी।

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. जल और जीवन दोनों में लेखक को क्या समानता दिखाई देती है?
2. ठूँठ को सर्वथा अभागा क्यों नहीं कहा जा सकता?
3. लेखक को यह कब लगा कि साहित्यकारों द्वारा दी गई वल्लरी की उपमाएँ कल्पना की बातें नहीं हैं?
4. सूखते हुए वृक्ष से हटकर वल्लरी कहाँ गई? उसका इस प्रकार हट जाना आज के समाज की किस प्रवृत्ति का परिचायक है?

लिखित

1. ठूँठे आम के वैभवपूर्ण दिनों के बारे में बुज़ुर्ग के वर्णन को अपने शब्दों में लिखिए।
2. लेखक को सहकार वृक्ष से लिपटी वल्लरी के बारे में साहित्यकारों द्वारा दी गई उपमाएँ पहले साकार और बाद में झूठी क्यों लगीं?
3. लेखक ने ठूँठ को बदलती परिस्थितियों का मूर्तिमान त्रास क्यों कहा है?
4. ठूँठा आम आज के सामाजिक, पारिवारिक जीवन की विडंबना का ज्वलंत उदाहरण है। टिप्पणी कीजिए।
5. "जिसने दूसरों के सुख में विभोर होना सीख लिया, वह कभी जड़ता को प्राप्त नहीं हो सकता।" प्रस्तुत पाठ के आधार पर इस कथन की पुष्टि कीजिए।

6. आपके विचार में ठूँठे पेड़ में सहसा साँस पड़ जाने के लिए निम्नलिखित में से कौन-सा कारण सर्वाधिक उपयुक्त है और क्यों--

(क) अपने आत्मज नवतरु का फलना-फूलना देखकर

(ख) वल्लरी को नवतरु से लिपटा देख स्वयं में कहीं, कोई उमंग जगना

(ग) दूसरों के सुख में स्वयं सुखी होना

(घ) वसंत ऋतु के आगमन से वृक्ष में नव प्राणों का संचरण

7. **आशय स्पष्ट कीजिए**

(क) आज वह नीरव है, उस चौराहे का जवाब जिसपर उत्तर-दक्खिन, पूरब-पश्चिम चारों ओर की राहें आ मिलती हैं।

(ख) प्राणवान जीवन भी जल की ही भाँति विकल अविरल बहता है। सो प्राणवान जीवन, मानव संस्कृति का उल्लास उपहार लिए उन चारों राहों की संधि पर मिलता था, जिसके एक कोण में उस प्रवाह से मिल एकांत शुष्क आज वह ठूँठ खड़ा है।

(ग) वासंती जैसे सारी त्रुटियों में रस भरी वासंती बनी रहती।

(घ) नवतरु वसंत के निरालस रस वितान में अँगड़ाती हुई अपनी वासंती वल्लरी को अभिनव तरुण मृदुल प्यार से भेंटता है।

भाषा-अध्ययन

1. निम्नलिखित शब्दों को पढ़िए और समझिए–

दहकती रजनी, नीरस शरीर, जनसंकुल चौराहे, प्रचंड धूप ।

उपर्युक्त शब्द-समूहों में रजनी, शरीर, चौराहे और धूप संज्ञा शब्दों के साथ क्रमशः दहकती, नीरस, जनसंकुल और प्रचंड विशेषणों का प्रयोग हुआ है। इनमें 'दहकती' विशेषण 'दहकना' क्रिया से, 'नीरस' विशेषण 'रस' संज्ञा से बने हैं। 'जनसंकुल' समस्तपद (जन + संकुल) है जो विशेषण का काम कर रहा है और प्रचंड मूलतः विशेषण है।

पाठ में से ऐसे दो-दो विशेषण दीजिए जो क्रिया और संज्ञा से बने हों। उन समस्त पदों के भी दो उदाहरण दीजिए जो विशेषण का कार्य कर रहे हों।

2. निम्नलिखित वाक्यों में उदाहरण के अनुसार संज्ञा पदबंध, विशेषण पदबंध और क्रिया पदबंध चुनिए –

उदाहरण: नवतरु वसंत के निरालस रस वितान में अँगड़ाती हुई अपनी वासंती वल्लरी को अभिनव तरुण मृदुल प्यार से भेंटता है।

संज्ञा पदबंध – वसंत के निरालस रस वितान
अँगड़ाती हुई अपनी वासंती वल्लरी

विशेषण पदबंध – अभिनव तरुण मृदुल

क्रिया पदबंध – भेंटता है ।

(क) उसकी टहनियों और डालों से टकराती हवा की सरसराहट दूर तक सुनाई पड़ती थी।

(ख) उस ठूँठ को सर्वथा अभागा तो नहीं कहा जा सकता।

(ग) एक मधुर मदिर पुष्पवती पराग भरी वल्लरी उससे लिपटी रही।

(घ) रात की भीगी गहराई में खोकर सुबह दिशाओं की ओर उड़ जाते।

(ड.) उसकी पीली-सफेद एक सूत की जड़ मिट्टी के ऊपर आ गई थी।

योग्यता-विस्तार

1. कवि बिहारी के निम्नलिखित दोहे को कंठस्थ कीजिए एवं उसकी तुलना 'ठूँठा आम' की संवेदना से कीजिए –

   जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु बीति बहार।
   अब, अलि, रही गुलाब में अपत, कंटीली डार।।

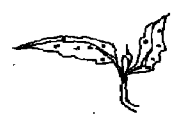
2. काज परै कछु और है, काज सरै कछु और।
   रहिमन भँवरी के भए, नदी सिरावत मौर।।

ठूँठे आम की स्थिति पर उपर्युक्त दोहा कहाँ तक चरितार्थ होता है? कक्षा में चर्चा कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

ठूँठा	:	पत्रहीन सूखा पेड़
जनसंकुल	:	भीड़ भरा
बटोही	:	पथिक, राहगीर
निरवलंब	:	जिसका कोई सहारा न हो
निस्पंद	:	जिसमें कोई हरकत न हो
नीरव	:	शांत
अपवाद	:	सामान्य से भिन्न
छतनार	:	जिसकी डालियाँ-टहनियाँ दूर तक फैली हों
डैने	:	पंख
कोटर	:	पेड़ के तने का खोखला भाग
पनाह	:	शरण
बियाबाँ (बयावन)	:	उजाड़ स्थान
मरीचिका	:	मृगतृष्णा, कड़ी धूप में रेतीले मैदानों में होने वाली जलधारा की मिथ्या प्रतीति
झींसी	:	बूँद-बूँद करके पड़ने वाली वर्षा, फुहार
प्रतान	:	फैलाव, विस्तार
निदाघ	:	गरमी
बौराई	:	आम के फूल से लदी
स्कंध	:	वृक्ष के तने की मोटी डाल का भाग, कंधा
मदिर	:	मदभरा
पराग	:	फूल के भीतर की धूल
वल्लरी	:	लता

सहकार	:	आम्र वृक्ष
चेता	:	ध्यान देना
ठमक (ना)	:	थम (ना)
व्यवधान	:	बाधा
परिकर	:	पगड़ी
रसाल	:	(मीठा) आम
अभिराम	:	सुंदर
अघाना	:	तृप्त होना
ऊर्जस्वित	:	शक्ति से संपन्न
निरभिलाष	:	बिना किसी इच्छा के
निरालस	:	आलस्य रहित
वितान	:	प्राचुर्य, आधिक्य, चँदोवा



काव्य - खंड

हिंदी कविता का विकास

हिंदी कविता हिंदी भाषा और साहित्य की अमूल्य निधि है। हिंदी भाषा जिस प्रकार भारत की सभी अन्य भाषाओं से हिली-मिली है, उसी प्रकार इसका साहित्य भी समग्र भारतीय भाषाओं के साहित्य के साथ कदम-से-कदम मिलाकर अग्रसर हो रहा है। इस मेल-जोल और घनिष्ठता के मूल कारण समग्र भारतीय साहित्य के विकास के स्रोतों की समानता में अंतर्निहित हैं। यही कारण है कि हिंदी काव्य भारतीय साहित्य से मिलकर उसकी समग्रता की एक झलक दिखलाता है।

हिंदी कविता की विकास यात्रा का समारंभ ढूँढ़ते हुए विद्वान उसके आदि रूपों की तलाश में अपभ्रंश तक जाते हैं। उत्तर भारत की शौरसेनी, मागधी, अर्धमागधी, अपभ्रंशों से जो भाषा-रूप विकसित हुए वे हिंदी के प्राचीन रूप हैं और उनमें रचे गए साहित्य की गणना हिंदी साहित्य में की जाती है। हिंदी साहित्य का यह प्रारंभिक रूप लगभग पूरी तरह काव्य प्रधान है।

हिंदी काव्य का आदि छोर बौद्ध सिद्धों के दोहों, चर्यापदों, सहजयान साधकों की बानियों, गोरखनाथ आदि संतों के वचनों,अमीर खुसरो की पहेलियों और मुकरियों, विद्यापति के पदों, राजस्थानी चारणों के गीतों तथा अन्य रासो, रासक और रासान्वयी काव्यों तक जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसका विकास सं. 1050 से माना है। इस प्रकार आज की हिंदी कविता का विकास लगभग 1000 वर्ष पूर्व से मानना उचित होगा।

हिंदी साहित्य का काल विभाजन

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास का नामकरण और काल विभाजन इस प्रकार किया है—

1. आदिकाल (वीरगाथा काल) (सं. 1050-1375)
2. पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) (सं.1375-1700)

3. उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) (सं. 1700-1900)
4. आधुनिक काल (सं. 1900 से...)

अब इस विभाजन को इस प्रकार स्वीकृत किया जा सकता है–

1. आदिकाल (1000 ई. से 1400 ई. तक)
2. भक्तिकाल (1400 ई. से 1650 ई. तक)
3. रीतिकाल (1650 ई. से 1850 ई. तक)
4. आधुनिक काल (1850 ई. से ... ...)

आदिकाल (1000 ई. से 1400 ई.)

ऐतिहासिक दृष्टि से यह काल विदेशी आक्रमणों एवं राजनैतिक अस्थिरता का काल था। इस काल को वीरगाथा काल के रूप में भी जाना जाता है, किंतु इस काल में वीरगाथाओं के अतिरिक्त धार्मिक, शृंगारिक [illegible]चारपरक रचनाओं और मुक्तक गीतों की परंपरा भी प्रबल थी। इस काल की मुख्य रचनाएँ दो रूपों में मिलती हैं–1. प्रबंध काव्य के रूप में 2. मुक्तक के रूप में। चंदबरदायी रचित 'पृथ्वीराज रासो' साहित्यिक प्रबंध के रूप में इस काल की प्रमुख रचना है। इसके अतिरिक्त इस काल में जगनिक द्वारा रचित 'आल्हखंड', गोरखनाथ की बानियाँ, चौरासी बौद्ध सिद्धों के दोहे और चर्या-गीत, विद्यापति के पद, खुसरो की पहेलियाँ एवं भाँति-भाँति के जैन चरित-काव्य मिलते हैं। इस काल की अन्य मुख्य रचनाएँ हैं–'विजयपाल रासो', 'हम्मीर रासो', 'कीर्तिलता', 'कीर्तिपताका', 'बीसलदेव रासो' आदि। जैन कवियों द्वारा लिखा गया इस काल का काव्य अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक है। इन काव्यों में शालिभद्र सूरि का 'भरतेश्वर बाहुबलि रास', आसगु का 'चंदन बाला रास' और 'जीवदया रास', जिनधर्म सूरि का 'स्थूलिभद्र रास', विजयसेन सूरि का 'रेवंतगिरि रास', अब्दुर्रहमान का 'संदेश रासक' आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

यह काल छंदोबद्ध कविता का काल था, जहाँ संस्कृत के वर्णवृत्तों के समानांतर मात्रिक छंदों का विशेष विकास हुआ। इस काल की कविता की भाषा ओज एवं प्रसाद-गुण

प्रधान है। इसमें अपभ्रंश से विकसित पुरानी हिंदी का रूप मिलता है। छप्पय, दोहा, त्रोटक, पद्धरिया आदि इस युग की कविता में प्रयुक्त छंद हैं।

आदिकाल बोलियों के काव्य के लिए प्रसिद्ध रहा है। इस समय तक हिंदी भाषा अपना कोई निश्चित स्वरूप नहीं ले पाई थी। काव्य-शैली और प्रारंभिक प्रवृत्तियों के आधार पर वीरगाथाओं में आश्रयदाताओं की प्रशंसा, उनके युद्ध, विवाह और आखेट वर्णन विशेष उल्लेखनीय हैं। कवि उन रचनाओं में विषयानुकूल ओजमयी भाषा का प्रयोग करते थे, साथ ही युद्धों का सजीव और वीररस पूर्ण वर्णन उनका उद्देश्य था। इस काल के कवियों ने ऐतिहासिक कथाओं का कल्पना के योग से काव्यमय चित्रण करने का प्रयास किया है। बौद्ध सिद्धों ने अपने अंतरसाधनात्मक अनुभवों को वाणी दी है। इंद्रियनिग्रह, वर्ण तथा वर्ग भेद का नकार, बाह्य आचरण का विरोध एवं सहजयोग का चित्रण इनकी विशेषताएँ हैं। नाथों ने हठयोग की साधना, ब्रह्मचर्य पालन तथा बाह्याचारों का विरोध किया है। जैन कवियों ने आचारगत पवित्रता, हिंसा, त्याग, उदारता आदि मानव-मूल्यों पर बल दिया है।

भक्तिकाल (1400 ई. से 1650 ई. तक)

राजनैतिक दृष्टि से यह काल मुगलों के स्थापित होने का काल था। इस्लामी आक्रमणकारियों का जनजीवन पर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ा। इन्हीं परिस्थितियों में भारतीय चिंतनधारा को विकसित होने का अवसर मिला। इस काल में जन-जीवन से जुड़े अनेक ऐसे कवि हुए जिन्होंने सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों आदि का खंडन किया और जनता को एक-दूसरे के निकट लाने का प्रयास किया।

हिंदी कविता का यह काल सैकड़ों वर्षों तक जीवंत बना रहा। इस काल के साहित्य में भाषा-भेद तो है, जैसे–राजस्थानी, ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी और मैथिली के रंग अलग-अलग हैं किंतु भावधारा इतने स्पष्ट रूप से एक है कि भाषा वैविध्य पर किसी का ध्यान ही नहीं जाता और यही भावधारा है– भक्ति की धारा। अनेक विशिष्टताओं के कारण इस क़ाल को हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग कहा जाता है।

प्रचलित है कि 'भक्ति द्राविड़ ऊपजी, लाए रामानंद', अर्थात भक्ति का जन्म दक्षिण में हुआ था। उसे उत्तर भारत में लाने का श्रेय रामानंद को है, जो रामानुजाचार्य की ही शिष्य परंपरा में थे। तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक परिस्थितियों के कारण

भक्ति धारा ने एक आंदोलन का रूप धारण कर लिया। इस भक्ति आंदोलन को जन सामान्य में फैलाने का श्रेय स्वामी रामानंद को दिया जाता है। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने कृष्णभक्त और रामानंद ने रामभक्त कवियों को भक्ति काव्य-रचना की प्रेरणा दी।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उपास्य देव के स्वरूप अर्थात निर्गुण-सगुण के आधार पर दो वर्ग किए–निर्गुण भक्ति कविता और सगुण भक्ति कविता।

निर्गुण भक्ति धारा दो रूपों में विभक्त हो गई–पहली ज्ञानमार्गी शाखा और दूसरी प्रेममार्गी शाखा।

सगुण भक्ति कविता भी दो प्रकार की है–राम भक्ति संबंधी और कृष्ण भक्ति संबंधी।

ज्ञान मार्गी शाखा के कवियों ने मूर्तिपूजा, रोज़ा, नमाज़, तंत्रवाद, बहुदेववाद आदि का विरोध किया। इन कवियों ने बाह्याडंबरों और अंधविश्वासों पर करारी चोट की। इनके लिए गुरु ही सब कुछ था। निर्गुण संत कवियों में कबीर सबसे महत्त्वपूर्ण कवि हैं। कबीर स्वामी रामानंद के शिष्य थे। कबीर की रचनाएँ साखी, सबद और रमैनी के रूप में मिलती हैं। धर्मदास, रैदास, मलूकदास, नानक, रज्जब, दादू दयाल, सुंदरदास आदि इस धारा के अन्य प्रमुख कवि हैं।

प्रेममार्गी शाखा के कवियों ने इसलाम की सूफी विचारधारा के अनुसार ईश्वर को निर्गुण मानते हुए लौकिक प्रेम गाथाओं के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम का स्वरूप अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है। वस्तुतः प्रेममार्गी शाखा के कवि प्रेम को ही ईश्वर प्राप्ति का मूलाधार मानते थे। इस शाखा के कवियों में जायसी, कुतुबन और मंझन प्रमुख हैं। मलिक मुहम्मद जायसी इस शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। जायसी ने 'पद्मावत' नामक प्रबंध काव्य में राजा रत्नसेन और पद्मावती की प्रख्यात भारतीय लोककथा को आध्यात्मिक धरातल पर उतारने का सफल प्रयास किया है। प्रेममार्गी कवियों की रचनाएँ प्रायः अवधी भाषा में हैं और दोहा-चौपाई उनके प्रमुख छंद हैं। जायसी के 'पद्मावत' में फ़ारसी की मसनवी शैली का भी प्रयोग हुआ है।

सगुण भक्ति की राम भक्ति धारा में गोस्वामी तुलसीदास का नाम सर्वोपरि है। तुलसी ने अपने महत्त्वपूर्ण महाकाव्य 'रामचरितमानस' में राम को ईश्वर का अवतार

मानकर उनके सगुण रूप को प्रतिपादित किया है। 'रामचरितमानस' में गुरु-शिष्य, माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-भाई के आदर्श संबंधों पर विशेष प्रकाश डाला गया है। तुलसीदास द्वारा रचित 12 ग्रंथ प्रामाणिक माने जाते हैं, जिनमें पाँच ग्रंथ प्रमुख हैं– 'रामचरितमानस', 'विनयपत्रिका', 'कवितावली', 'गीतावली' और 'दोहावली'।

इस शाखा के कवियों की भाषा प्रायः अवधी है। तुलसी ने अपने 'रामचरितमानस' की रचना अवधी में ही की है किंतु उनकी 'विनयपत्रिका', 'दोहावली' और 'कवितावली' में ब्रज भाषा का प्रयोग हुआ है। राम काव्यों की रचना दोहा और चौपाई शैली में अधिक हुई है। राम भक्ति शाखा के कवियों में केशवदास, अग्रदास, नाभादास, हृदयराम आदि उल्लेखनीय हैं।

कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण को आराध्य मानकर अपने काव्य में कृष्ण की ब्रजलीलाओं का मुख्य रूप से वर्णन किया। महाकवि सूरदास कृष्ण भक्ति शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। सूरदास ने भागवत को आधार बनाकर 'सूरसागर' की रचना की। 'सूरसागर' में कृष्ण की बाललीला तथा गोपियों के प्रेम, संयोग और वियोग का मनोहारी वर्णन मिलता है। इस शाखा के कवियों ने ब्रजभाषा में रचना की और पद शैली को अपनाया है। कृष्ण भक्तिशाखा के प्रमुख कवियों को 'अष्टछाप' के कवियों के नाम से भी जाना जाता है। अष्टछाप के कवि हैं– सूरदास, कुंभनदास, परमानंद दास, कृष्णदास, नंददास, गोविंददास, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास। इनमें सूरदास, कुंभनदास, परमानंददास, कृष्णदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे और नंददास, गोविंददास, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास गोसाईं विट्ठलनाथ के।

रीतिकाल (1650 ई. से 1850 ई. तक)

इस काल तक आते-आते मुगल साम्राज्य पूर्ण रूप से स्थापित हो चुका था। राजदरबारों में विलासिता की प्रवृत्ति बढ़ने लगी थी। साहित्य भी इससे अछूता न रह सका। कवि राज-दरबारों के आश्रय में रहकर शृंगारपरक कविताएँ करने लगे। इसीलिए रीतिकाल को शृंगारकाल के नाम से भी जाना जाता है।

इस काल की हिंदी कविता में ऐसी कविताएँ अधिक रची गईं, जिनमें कविता के शास्त्र पक्ष को, अर्थात लक्षणों को प्रस्तुत किया गया है। कुछ कवियों ने लक्षणों को

आधार मानकर उदाहरणस्वरूप लक्ष्य कविता भी रची है। कुछ ने लक्षण-लक्ष्य का ध्यान न कर विशुद्ध भाव से कविता की है। ऐसे कवियों में शृंगारिक कविताओं की प्रधानता है। इस काल में मुक्तक रचनाओं के साथ ही अनेक प्रबंध काव्य भी रचे गए। इस काल में अधिकांश कवि किसी राजा-महाराजा, सामंतों के संरक्षण में रहकर रचनाएँ करते थे। आश्रयदाता को प्रसन्न करने के लिए वे नायक-नायिका भेद की भी चर्चा करते थे।

कुछ कवि ऐसे भी थे, जो वीरता की भावना को जगाते थे। इनके अलावा अनेक कवि स्वतंत्र रूप से भी अपनी कविताएँ करते थे। ऐसे कवियों में शृंगार भाव होता था पर भक्ति, नीति, समाज चेतना-परक कविताएँ भी इस काल में प्रचुर मात्रा में रची गईं।

इस काल में हिंदी कविता विशेष रूप से समृद्ध हुई। ब्रज और अवधी का अनोखा मेल हुआ। कविता के कलापक्ष को अतिशय बारीकी से तराशा गया। शब्द की शक्ति को पहचानने और उसकी क्षमता का भरपूर उपयोग करने का प्रयास किया गया। इस प्रकार की कवि-कौशलपरक रचनाओं का आरंभ भक्तिकालीन कवि केशवदास द्वारा रचित 'रामचंद्रिका' से ही हो गया था, जहाँ वर्ण्य विषय पर ध्यान केंद्रित करने की जगह वर्णन कौशल पर अधिक ध्यान दिया गया था। इस प्रकार के कवियों में बिहारी, देव, मतिराम, पद्माकर, बोधा, ठाकुर, घनानंद और भूषण अधिक उल्लेखनीय हैं। लोक-चेतना, सामाजिक शिष्टाचार एवं नीतिपरक ढंग की रचना करने वालों में वृंद, बोधा और गिरधर कविराय आदि प्रसिद्ध हैं।

आधुनिक काल (1850 ई. से ... ...)

सन 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम ने भारत में एक नई चेतना की लहर प्रवाहित की। जन-जीवन के साथ ही साहित्य भी इससे प्रभावित हुआ। इस समय के साहित्य में स्वदेश प्रेम की भावना ने बल पकड़ा।

रीतिकाल के बाद के इस काल को पं. रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक काल नाम दिया। इस काल को शुक्ल जी ने उत्कर्ष काल भी कहा और गद्य की प्रमुखता देखकर गद्यकाल भी।

सामान्यतः हिंदी साहित्य का आधुनिक काल सन 1850 से माना जाता है। यही समय भारतेंदु का जन्मकाल भी है। सन 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में राष्ट्रीयता

की एक समग्र चेतना का विकास देश में हुआ। अंग्रेज़ी शासन से छुटकारा पाने के लिए बिखरी ताकतों को एकजुट करने का अभियान शुरू हुआ। भारतेंदु काल तक यद्यपि अंग्रेज़ी शासन की स्तुति गायन की परंपरा भी चलती रही, फिर भी अंतरतम में विद्रोह की लहर भी चलनी शुरू हो गई थी, जो भारतेंदु की इन दो पंक्तियों में ही बहुत स्पष्टता से परिलक्षित होती है–

अंग्रेज़-राज सुख-साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।

भारतेंदु-युग के रचनाकार कविता के क्षेत्र में ब्रजभाषा के मोह से भले ही ग्रस्त रहे हों, उन्होंने कविता के विषय क्षेत्र को बहुत अधिक विस्तार दे दिया। कविता केवल आश्रयदाता की प्रशंसा, भक्ति या श्रृंगार रस के चित्रण तक ही सीमित नहीं रही, अपितु जीवन के हर एक पक्ष को अभिव्यक्त करने में सचेष्ट हो चली। कवियों का ध्यान देशोद्धार, राष्ट्रप्रेम, अतीत के गौरव आदि विषयों की ओर गया। इस काल के कवियों में 'भारतेंदु', बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', प्रतापनारायण मिश्र, अंबिकादत्त व्यास आदि मुख्य हैं। इस प्रकार कविता में आधुनिकता भारतेंदु काल से ही आ गई थी और इसी से हिंदी कविता का आधुनिक काल भारतेंदु-युग से माना जाता है।

भारतेंदु के बाद हिंदी कविता को सबसे अधिक बल प्रदान किया महावीर प्रसाद द्विवेदी ने। द्विवेदी जी ने कवियों को विषय क्षेत्र भी सुझाए और कविता की भाषा भी सुधारी। उनके इस प्रयास के कारण खड़ी बोली हिंदी का पर्याय बन गई। उनके काल तक जो कवि ब्रजभाषा में कविता कर रहे थे वे भी खड़ी बोली में कविता करने लगे। इस काल के कवियों ने सामाजिक, ऐतिहासिक और पौराणिक संदर्भों को काव्य का विषय बनाकर मुक्तक काव्यों के अतिरिक्त खंड एवं प्रबंध काव्यों की रचना भी की। इस काल के कवियों में श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', रामनरेश त्रिपाठी, सियारामशरण गुप्त आदि उल्लेखनीय हैं।

सन 1920 के आसपास छायावाद का उदय हुआ। कविता में इस भावधारा का आरंभ मुकुटधर पांडेय की कविता 'कुररी के प्रति' से माना जाता है। यह कविता सन 1920 में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। इस काल में कवियों ने रूढ़िगत काव्य-विषय और उपमानों को प्रायः छोड़ दिया। काव्य रचना में नूतन प्रवृत्ति और शैली का उदय होने

लगा। काव्य भाषा में लाक्षणिक प्रयोगों को प्रधानता दी जाने लगी। कविता में प्रतीकात्मक तत्त्वों की प्रधानता बढ़ने लगी। इस काल में मुक्त छंद के अतिरिक्त स्वच्छंद कविता शैली का विकास हुआ। वैयक्तिकता, सूक्ष्म सौंदर्य का चित्रण, जिज्ञासा, प्रकृति का मानवीकरण, नारी का विविध रूपों में चित्रण छायावादी कविता की प्रमुख विशेषताएँ हैं। छायावादी कवियों में जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत एवं महादेवी वर्मा का नाम उल्लेखनीय है। प्रसाद की 'कामायनी' इस काल की श्रेष्ठ रचना है।

आगे चलकर छायावादी कविता की प्रवृत्ति-विशेष के रूप में रहस्यवाद का नाम आया। रहस्यवाद में प्रकृति के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण उभरने लगा। कवि जगत और प्रकृति के पीछे छिपी किसी अनंत सत्ता की ओर संकेत करने लगे। सौंदर्य, प्रेम और शृंगार इस कविता की विशेषताएँ हैं। प्रसाद, पंत और महादेवी वर्मा का नाम रहस्यवाद से विशेष रूप से जुड़ा है।

इन्हीं दिनों हरिवंश राय 'बच्चन', नरेंद्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', भगवती चरण वर्मा, गोपाल सिंह 'नेपाली', शिवमंगल सिंह 'सुमन' आदि की प्रगीतधर्मी रचनाओं ने लोकप्रियता प्राप्त की। इनके गीतों ने कवि सम्मेलनों में धूम मचा दी। बाद में गोपालदास 'नीरज', रामावतार त्यागी, रामानंद दोषी, रमानाथ अवस्थी, वीरेंद्र मिश्र, बलबीर सिंह 'रंग' आदि ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया।

सन 1936 के आसपास कविता के क्षेत्र में जिस नवीन भावधारा का उदय हुआ, उसे प्रगतिवाद के नाम से जाना जाता है। प्रगतिवादी कविता में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक शोषण से मुक्ति का स्वर है। आरंभ में सुमित्रानंदन पंत और सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने प्रगतिवादी कविता को नया स्वर दिया। केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, रामविलास शर्मा, शमशेर बहादुर सिंह, शील, शिवमंगल सिंह 'सुमन', त्रिलोचन शास्त्री, भारतभूषण अग्रवाल, गजानन माधव 'मुक्तिबोध' आदि इस भावधारा के सशक्त कवि हैं।

सन 1943 में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने 'तार सप्तक' नाम से एक कविता संग्रह संपादित किया। इस संग्रह में सात कवियों की रचनाएँ थीं। इन कवियों ने कविता में भाव, विचार-प्रक्रिया, छंद, प्रतीक, अलंकार में परिवर्तन करने की चेष्टा की। इन कवियों की रचनाओं में बौद्धिक चिंतन की प्रधानता है। प्रयोगवादी कवियों में

अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, मुक्तिबोध, नेमिचंद्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

इसी भावधारा के कवियों ने नई प्रवृत्तियों को अपनाकर नई कविता को जन्म दिया।

हिंदी कविता में एक बड़ा मोड़ भारत पर चीन के आक्रमण (1962) के बाद आया। तभी औद्योगिक विकास के समानांतर मनुष्य की घटती ताकत को भी गंभीरता से लिया गया। इस दौरान लघुमानव, बुभुक्षु मानव या भूखी पीढ़ी, कामना-वासना के पंक में सने मानव आदि को लेकर कविताएँ रची गईं। कविताओं का एक वह वर्ग भी आया, जो कविता के पारंपरिक रूपों को पूरी तरह से नकार देने के कारण अकविता नाम से विख्यात हुआ। फिर एक नया नाम आया समकालीन कविता।

हिंदी की नई कविता के क्षेत्र में जिन विशिष्ट कवियों ने विशेष योगदान दिया है, उनमें अज्ञेय, मुक्तिबोध, कुँवरनारायण, भवानीप्रसाद मिश्र, नागार्जुन, रघुवीर सहाय, त्रिलोचन शास्त्री, शमशेरबहादुर सिंह, धर्मवीर भारती, केदारनाथ सिंह, लक्ष्मीकांत वर्मा, जगदीश गुप्त, नरेश मेहता, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, धूमिल, दुष्यंत कुमार और समकालीन कवियों में राजेश जोशी, लीलाधर जगूड़ी, कुमार विकल, विनोद कुमार शुक्ल, चंद्रकांत देवताले, मंगलेश डबराल आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी कविता प्रगति की अनेक संभावनाओं के साथ निरंतर विकास-पथ पर अग्रसर होती जा रही है।

सूरदास

महाकवि सूरदास का जन्म सन 1478 में रुनकता या रेणुका क्षेत्र में हुआ, परंतु कुछ विद्वानों के मत में उनका जन्म दिल्ली के पास सीही गाँव में हुआ था। अपनी अद्‌भुत प्रतिभा तथा गान विद्या में निपुणता के कारण बाल्यावस्था में ही सूरदास का नाम दूर-दूर तक फैल गया था। अनेक लोग उनके सेवक बन गए थे। वे स्वामी के रूप में पूजे जाने लगे। तरुणाई में उन्हें संसार से विरक्ति हो गई। वे मथुरा के विश्राम घाट पहुँच गए। लेकिन वहाँ पर थोड़े ही दिन रहने के बाद वे आगरा-मथुरा के बीच यमुना के किनारे गऊ घाट पर रहने लगे। यहाँ उनकी भेंट स्वामी वल्लभाचार्य से हुई और वे उनके शिष्य बन गए। वल्लभाचार्य ने उन्हें श्रीनाथ जी के मंदिर में भजन-कीर्तन के लिए नियुक्त कर दिया। परासौली में सन 1583 में उनका निधन हुआ।

सूरदास ने भजन-कीर्तन के रूप में भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं का मधुर और प्रभावपूर्ण गायन किया। इस प्रकार से जो पद बने उन्हें **सूरसागर** नाम के विशाल ग्रंथ में एकत्र किया गया है।

इन पदों में श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं से संबंधित पद विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इन पदों में सूरदास ने ब्रजभूमि के मधुर परिवेश, गोपिकाओं के हाव-भाव, गोप-बालकों के भोले और सहज-स्वभाव का मनोरम और मार्मिक चित्रण किया है।

बच्चों की निश्छल भाव-भंगिमाओं का जैसा चित्रण सूरदास ने किया है, उसे देखकर विद्वान लोग मानते हैं कि सूरदास जन्मांध नहीं थे।

इनके अतिरिक्त शृंगार के दोनों पक्षों– संयोग और वियोग तथा निर्गुण ज्ञान मार्ग के खंडन से संबंधित पद भी महत्त्वपूर्ण हैं। उनकी काव्य-भाषा ब्रज है, जिसमें उपमा, रूपक और वक्रोक्ति का चमत्कार देखते ही बनता है।

इनकी प्रसिद्‌ध रचनाएँ हैं– **सूरसागर, सूरसारावली** और **साहित्य लहरी**।

यहाँ **सूरसागर** से तीन पद लिए गए हैं। पहले पद में बाल कृष्ण के अद्‌भुत सौंदर्य का चित्रण हुआ है और उसे ब्रज की गली-गली में बहने वाली सौंदर्य की नदी का रूपक दिया गया है। दूसरे पद में किशोर कृष्ण और राधा के प्रथम मिलन का सहज चित्रण है, जिसमें बातों ही बातों में कृष्ण और राधा के बीच प्रेम-भाव पैदा हो जाता है। तीसरे पद में गोपियाँ उद्‌धव के ज्ञान-मार्ग को कृष्ण-भक्ति के सम्मुख अति तुच्छ सिद्‌ध करती हुई सगुण की उपासना को श्रेष्ठ सिद्‌ध करती हैं।

पद

(1)

सोभा-सिंधु न अंत रही री ।
नंद-भवन भरि पूरि उमँगि चलि, ब्रज की बीथिनि फिरति बही री ।।
देखी जाइ आजु गोकुल मैं, घर-घर बेंचति फिरति दही री ।
कहँ लगि कहौं बनाइ बहुत बिधि,कहत न मुख सहसहुँ निबही री ।।
जसुमति-उदर-अगाध-उदधि तैं, उपजी ऐसी सबनि कही री ।
सूरश्याम प्रभु इंद्र-नीलमनि, ब्रज-बनिता उर लाइ गही री ।। 1।।

(2)

बूझत स्याम कौन तू गोरी ।
कहाँ रहति, काकी है बेटी, देखो नाहिं कबहूँ ब्रज खोरी ।।
काहे कौं हम ब्रज-तन आवतिं,खेलति रहतिं आपनी पौरी ।
सुनत रहतिं स्रवननि नंद-ढोटा करत फिरत माखन-दधि-चोरी ।।
तुम्हरौ कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलो संग मिलि जोरी ।
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी ।। 2।।

(3)

जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै ।
मूरी के पातनि के बदलैं, को मुक्ताहल दैहै ।।
यह ब्यौपार तुम्हारो ऊधौ, ऐसैं ही धर्यौ रैहै ।
जिन पै तैं लै आए ऊधौ, तिनहिं के पेट समैहै ।।
दाख छाँड़ि कै कटुक निबौरी, को अपने मुख खैहै ।
गुन करि मोही सूर सावरैं, को निरगुन निरबैहै ।। 3 ।।

प्रश्न - अभ्यास

मौखिक

1. कवि ने 'सोभा-सिंधु' किसे कहा है?
2. लोगों ने उसका उद्गम स्थल किसे बताया है?
3. दूसरे पद में कृष्ण राधा से क्या प्रश्न करते हैं?
4. सूर ने कृष्ण को रसिक शिरोमणि क्यों कहा है?
5. गोपियों ने योग और निर्गुण मार्ग को ठगी का सौदा क्यों बताया है?
6. 'जिन पै तैं लै आए ऊधौ, तिनहिं के पेट समैहै' पंक्ति में किसकी ओर संकेत है?

लिखित

1. गोपी ने कृष्ण सौंदर्य के व्यापक प्रभाव का जो चित्रण किया है, उसे अपने शब्दों में लिखिए।
2. राधा ने कृष्ण पर क्या व्यंग्य किया और कृष्ण ने उसका क्या उत्तर दिया?
3. कृष्ण और राधा के प्रथम मिलन के अवसर पर हुए संवाद को अपने शब्दों में लिखिए।
4. गोपियों ने किन उदाहरणों द्वारा योग और ज्ञान-मार्ग को भक्ति की अपेक्षा अति तुच्छ बतलाया है?

योग्यता-विस्तार

1. रसखान और मीरा के उन पदों को खोजकर पढ़िए, जिनमें कृष्ण के सौंदर्य का चित्रण हुआ है।
2. 'सूरसागर' से ऐसे कुछ पद खोजिए, जिनमें निर्गुण का खंडन और सगुण का मंडन हुआ है।

शब्दार्थ और टिप्पणी

पद-1

भरिपूरि	:	भरपूर
उमँगि चलि	:	उमंगपूर्वक चलकर
बीथिनि	:	गलियों में
सहसहुँ	:	हज़ारों
कहत न मुख सहसहुँ निबही री	:	हज़ारों मुखों से भी वर्णन नहीं किया जा सकता
उदर	:	पेट
अगाध	:	जिसकी गहराई की कोई सीमा न हो
उदधि	:	समुद्र
उपजी	:	उत्पन्न हुई
इंद्र नीलमनि	:	नीलकांत मणि, सुंदरता में इंद्र नीलमणि के समान, हलकी नीली आभा वाला
ब्रज-बनिता	:	ब्रज की गोपियाँ
उर लाइ	:	हृदय से लगाकर
गही	:	पकड़ी

पद-2

बूझत	:	पूछते हैं
ब्रज खोरी	:	ब्रज की गलियों में
आवति	:	आती है
पौरी	:	ड्योढ़ी, आँगन
स्रवननि	:	कानों से
ढोटा	:	पुत्र
लैहैं	:	लेंगे
रसिक सिरोमनि	:	सबसे बड़े रसिक श्रीकृष्ण
बातनि	:	बातों में
भुरई	:	बहका दीं
भोरी	:	भोली, सरल स्वभाव की

पद-3

जोग	:	योग
ठगौरी	:	ठग विद्या
न बिकैहै	:	नहीं बिक पाएगी
मूरी	:	मूली
पातनि	:	पत्ते
मुक्ताहल	:	मोती
दाख	:	अँगूर
कटुक निबौरी	:	निंबोली, नीम का कड़वा फल
खैहै	:	खाएगा
गुन	:	गुण, रूप सौंदर्य
निरबैहै	:	निभाएगा, स्वीकार करेगा

तुलसीदास

महाकवि तुलसीदास का जन्म सन 1532 में हुआ और मृत्यु सन 1623 में। उनका जन्म स्थान राजापुर, ज़िला बाँदा माना जाता है, किंतु नए प्रमाणों के आधार पर कुछ लोग उनका जन्म-स्थान सोरों (ज़िला एटा) मानते हैं।

तुलसी का बचपन बहुत कष्टों और कठिनाइयों में बीता। जीवन के प्रारंभिक वर्षों में ही उनके माता-पिता से उनका बिछोह हो गया था। तदनंतर वे भिक्षा माँग-माँगकर उदरपूर्ति करते रहे। उनके गुरु के संबंध में भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। 'मानस' के एक सोरठे से यह ध्वनि अवश्य निकलती है कि उनके गुरु का नाम नरहरि दास था। प्रसिद्ध है कि उनका विवाह पं. दीनबंधु पाठक की सुपुत्री रत्नावली से हुआ था तथा उन्हीं के उपदेश से प्रेरित होकर वे गृह त्यागकर विरक्त हो गए थे। बहुत दिनों तक वे अयोध्या, काशी, चित्रकूट आदि नाना तीर्थों का भ्रमण करते रहे।

तुलसीदास द्वारा रचित प्रसिद्ध रचनाएं हैं—**रामलला नहछू**, **जानकी मंगल**, **पार्वती मंगल**, **रामचरितमानस**, **गीतावली**, **विनयपत्रिका**, **बरवै रामायण**, **दोहावली**, **कवितावली**, **हनुमान बाहुक** और **वैराग्य संदीपनी**। **रामचरितमानस** तुलसीदास की प्रसिद्धि और लोकप्रियता का सबसे बड़ा आधार है।

ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं पर तुलसी का समान अधिकार था। उन्होंने **रामचरितमानस** की रचना अवधी में और **विनयपत्रिका** तथा **कवितावली** की रचना ब्रजभाषा में की है। उन्होंने अपने समय में प्रचलित सभी काव्य-रूपों में रचनाएँ कीं। **रामचरितमानस** एक उच्चकोटि का प्रबंधकाव्य है, जिसमें मुख्य छंद चौपाई है तथा बीच-बीच में दोहे, सोरठे, हरिगीतिका तथा अन्य छंद पिरोए गए हैं। **विनयपत्रिका** में गीतबद्ध परिपाटी की रचनाएँ हैं तथा **कवितावली** कवित्त-सवैया पद्धति की एक उत्कृष्ट रचना है। इस प्रकार प्रबंध और मुक्तक दोनों काव्य-रूपों में तुलसी की समान गति है। सच तो यह है कि तुलसी की काव्य-प्रतिभा और उनका लोकगत प्रभाव अनन्य और बेजोड़ है।

यहाँ तुलसीदास की **विनयपत्रिका** से दो पद और उनके प्रसिद्ध महाकाव्य **रामचरितमानस** के अयोध्याकांड से 'राम वन-गमन' प्रसंग से कुछ अंश लिए गए हैं।

विनयपत्रिका में तुलसी ने कलियुग के त्रास से मुक्ति हेतु राम की भक्ति पाने के लिए राम के दरबार में एक 'विनयपत्रिका' प्रस्तुत की है।

यहाँ दिए गए पहले पद में राम की भक्ति की अनन्यता, अन्य मतों– कर्म, ज्ञान, उपासना की अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता, नाम की महत्ता और परमार्थ की दृढ़तापूर्वक साधना आदि का रोचक चित्रण हुआ है। विवेक के जगने पर कवि को सारा शास्त्र-ज्ञान व्यर्थ प्रतीत होने लगता है। जैसे दीप की बातें करने भर से अंधकार नहीं मिटता, केवल कल्पतरु और कामधेनु लिख देने से अथवा मधुर मिष्ठान्न और व्यंजनों का नाम लेने से भूख नहीं मिटती, वैसे ही कोरे शास्त्र-ज्ञान से सच्चे सुख की प्राप्ति नहीं होती।

राम वन-गमन प्रसंग में वन-पथ पर राम-सीता और लक्ष्मण के चलते समय ग्रामीण महिलाओं की जिज्ञासा और सीता के संकोच भरे शिष्ट और शालीन उत्तर का मार्मिक चित्रण हुआ है।

भक्ति

पद-1

भरोसो जाहि दूसरो सो करो ।
मोको तो रामको नाम कलपतरु कलि कल्यान फरो ॥
करम उपासन,ग्यान,बेदमत, सो सब भाँति खरो ।
मोहि तो 'सावन के अंधहि' ज्यों सूझत रंग हरो ॥
चाटत रह्यो स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो ।
सो हौं सुमिरत नाम-सुधारस पेखत परुसि धरो ॥
स्वारथ औ परमारथ हू को नहिं कुंजरो-नरो ।
सुनियत सेतु पयोधि पषाननि करि कपि-कटक तरो ॥
प्रीति-प्रतीति जहाँ जाकी, तहँ ताको काज सरो ।
मेरे तो माय-बाप दोउ आखर, हौं सिसु-अरनि अरो ॥
संकर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरो ।
अपनो भलो राम-नामहि ते तुलसिहि समुझि परो ॥

पद-2

अस कछु समुझि परत रघुराया !
बिनु तव कृपा दयालु ! दास-हित ! मोह न छूटै माया ॥
वाक्य-ग्यान अत्यंत निपुन भव-पार न पावै कोई ।
निसि गृहमध्य दीपकी बातन्ह,तम निबृत्त नहिं होई ॥

जैसे कोइ इक दीन दुखित अति असन-हीन दुख पावै ।
चित्र कलपतरु कामधेनु गृह लिखे न बिपति नसावै ॥
षटरस बहु प्रकार भोजन कोउ, दिन अरु रैनि बखानै ।
बिनु बोले संतोष-जनित सुख खाइ सोइ पै जानै ॥
जब लगि नहिं निज हृदि प्रकास, अरु विषय-आस मन माहीं ।
तुलसिदास तब लगि जग-जोनि भ्रमत सपनेहुँ सुख नाहीं ॥

राम वन-गमन

कोटि मनोज लजावनिहारे । सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ॥
सुनि सनेहमय मंजुल बानी । सकुचि सीय मन महुँ मुसुकानी ॥

तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सँकोच सकुचत बरबरनी ॥
सकुचि सप्रेम बाल मृगनयनी । बोली मधुर बचन पिकबयनी ॥

सहज सुभाय सुभग तन गोरे । नामु लखनु लघु देवर मोरे ॥
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी । पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी ॥

खंजन मंजु तिरीछे नयननि । निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि ॥
भई मुदित सब ग्रामबधूटीं । रंकन्ह राय रासि जनु लूटीं ॥

अति सप्रेम सिय पायँ परि बहुबिधि देहिं असीस ।
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह जब लगि महि अहि सीस ॥

पारबती सम पतिप्रिय होहू । देबि न हम पर छाँड़ब छोहू ॥
पुनि पुनि विनय करिअ कर जोरी । जौं एहि मारग फिरिअ बहोरी ॥

दरसनु देब जानि निज दासी । लखीं सीयँ सब प्रेम पिआसी ।।
मधुर वचन कहि कहि परितोषीं। जनु कुमुदिनीं कौमुदीं पोषीं ।।

तबहिं लखन रघुबर रुख जानी । पूँछेउ मगु लोगन्हि मृदु बानी ।।
सुनत नारि नर भए दुखारी । पुलकित गात बिलोचन बारी ।।

मिटा मोदु मन भए मलीने । विधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने ।।
समुझि करम गति धीरजु कीन्हा । सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा ।।

लखन जानकी सहित तब गवनु कीन्ह रघुनाथ ।
फेरे सब प्रिय वचन कहि लिए लाइ मन साथ ।।

फिरत नारि नर अति पछिताहीं। दैअहि दोषु देहिं मन माहीं ।।
सहित विषाद परसपर कहहीं। बिधि करतब उलटे सब अहहीं ।।

निपट निरंकुस निठुर निसंकू । जेहिं ससि कीन्ह सरुज सकलंकू ।।
रूख कलपतरु सागरु खारा । तेहिं पठए बन राजकुमारा ।।

जौं पै इन्हहि दीन्ह बनबासू। कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू ।।
ये बिचरहिं मग बिनु पदत्राना। रचे बादि विधि बाहन नाना ।।

ये महि परहिं डासि कुस पाता। सुभग सेज कत सृजत विधाता ।।
तरुबर बास इन्हहि बिधि दीन्हा। धवलधाम रचि रचि श्रमु कीन्हा ।।

जौं ए मुनि पट धर जटिल सुंदर सुठि सुकुमार ।
बिबिध भाँति भूषन बसन बादि क्रिए करतार ।।

जौं ए कंद मूल फल खाहीं । बादि सुधादि असन जग माहीं ॥
एक कहहिं ए सहज सुहाए । आपु प्रगट भए बिधि न बनाए ॥

जहँ लगि बेद कही बिधि करनी । श्रवन नयन मन गोचर बरनी ॥
देखहु खोजि भुअन दस चारी । कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी ॥

इन्हहि देखि बिधि मनु अनुरागा । पटतर जोग बनावै लागा ॥
कीन्ह बहुत श्रम एक न आए। तेहिं इरिषा बन आनि दुराए ॥

एक कहहिं हम बहुत न जानहिं । आपुहि परम धन्य करि मानहिं ॥
ते पुनि पुन्यपुंज हम लेखे। जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखे ॥

एहि बिधि कहि कहि वचन प्रिय लेहिं नयन भरि नीर ।
किमि चलिहहिं मारग अगम सुठि सुकुमार सरीर ॥

प्रश्न-अभ्यास

भक्ति

मौखिक

1. पहले पद में भक्ति के किस भाव की प्रधानता है–
   (क) सेवक-सेव्य भाव की
   (ख) अनन्य भाव की
   (ग) निष्काम भाव की
   (घ) दास्य भाव की

2. कवि ने राम के नाम को कल्पतरु क्यों कहा है?
3. जैसे सावन के अंधे को सर्वत्र हरा-ही-हरा दिखलाई पड़ता है, वैसे ही तुलसी को सर्वत्र क्या दिखलाई पड़ता है?
4. तुलसी साधना के अन्य मार्गों का विरोध नहीं करते, किंतु उनकी गहन आस्था भक्ति में ही है। ऐसा कविता की किन पंक्तियों से स्पष्ट होता है?
5. जीवन के विविध अनुभवों से गुज़रकर तुलसी को क्या बात समझ में आने लगी है?
6. 'वाक्य ज्ञान' से कवि का क्या आशय है?
7. कल्पतरु और कामधेनु को घर की दीवारों पर लिख लेने मात्र से कष्टों का निवारण क्यों संभव नहीं है?

लिखित

1. निम्नलिखित पंक्तियों के भाव एवं शिल्प सौंदर्य को स्पष्ट कीजिए–

   (क) चाटत रह्यो स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो।

   (ख) स्वारथ औ परमारथ हू को नहिं कुंजरो-नरो।

2. 'सिसु-अरनि अरो' का आशय समझाइए।
3. केवल शास्त्र-ज्ञान के बल पर इस संसार से मुक्ति संभव नहीं, कवि ने किन दृष्टांतों द्वारा इस कथन की पुष्टि की है?
4. तुलसी के अनुसार इस संसार में मनुष्य को कब तक सच्चे सुख की प्राप्ति संभव नहीं है?
5. प्रस्तुत पदों के आधार पर तुलसी की भक्ति की कतिपय विशेषताओं का उल्लेख कीजिए ।

योग्यता-विस्तार

निम्नलिखित पंक्तियों को ध्यान से पढ़िए और इनकी तुलना 'भरोसो जाहि दूसरो सो करो' पद से कीजिए–

(क) एक भरोसो एक बल, एक आस विस्वास।
एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास॥

(ख) मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।

(ग) जिन मधुकर अंबुज रस चाख्यो क्यों करील मन भावै।
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै।।

राम वन-गमन

मौखिक

1. ग्रामीण महिलाओं ने सीता से क्या प्रश्न किया?
2. प्रश्न सुनकर सीता संकोच में क्यों पड़ गईं?
3. निम्नलिखित पंक्तियों में अलंकार बताइए –

(क) सकुचि सप्रेम बाल मृगनयनी। बोली मधुर बचन पिकबयनी ।

(ख) मधुरबचन कहि-कहि परितोषीं। जनु कुमुदिनीं कौमुदीं पोषीं ।।

लिखित

1. ग्राम वधुओं और सीता के बीच हुए संवाद को अपने शब्दों में लिखिए ।
2. निम्नलिखित पंक्तियों के काव्य-सौंदर्य को स्पष्ट कीजए –
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी ।।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहिं सियँ सयननि ।।
3. ग्राम वधूटियों ने सीता को क्या आशीर्वाद दिया?
4. ग्राम के नर-नारियों ने किन उदाहरणों द्वारा विधाता के कर्मों को उलटा और निरंकुश सिद्ध किया है?

योग्यता-विस्तार

1. 'बहुरि बदनु विधु...सयननि' की तुलना 'कवितावली' की निम्नलिखित पंक्तियों से कीजिए –
सुनि सुंदर बैन, सुधारस साने, सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हे, समुझाइ कछू मुसकाय चली।।
2. 'कवितावली' से 'राम वन-गमन' प्रसंग को पढ़िए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

पद-1

फरो	: फलना
पातरि	: पत्तल
नाम सुधारस	: नाम रूपी अमृत रस
पेखत	: देखते ही
स्वारथ और परमारथ...कुंजरो नरो	: युधिष्ठिर ने महाभारत के युद्ध में अश्वत्थामा को नर अथवा हाथी बतलाकर संशय प्रकट किया था, किंतु कवि को स्वार्थ और परमार्थ में कोई संशय नहीं है।
पषाननि	: पाषाणों से, पत्थरों से
कपि कटक	: वानर सेना
सरो	: पूरा हुआ
सिसु अरनि	: बच्चे की-सी हठ
दोउ आखर	: 'राम' शब्द के दो अक्षर-'रा' और 'म'
साखि	: साक्षी, गवाह
राखि कहौं	: कुछ छिपाकर कहूँ
जरि जीह गरो	: जीभ जलकर गल जाए

पद-2

वाक्यज्ञान	: शास्त्रज्ञान
बातन्ह	: बातों से
असन	: भोजन
कामधेनु	: सब इच्छाओं को पूरा करने वाली गाय
नसावै	: नष्ट होती है

षट्रस	:	भोजन के छह प्रकार के स्वाद-खट्टा, मीठा, नमकीन, कड़वा, तीता, कसैला
जग जोनि भ्रमत	:	संसार की चौरासी लाख योनियों में भटकना

राम वन-गमन

अहहिं	:	हैं
दुहूँ सँकोच	:	बताने-न बताने की दुविधा-भरा संकोच
सकुचति	:	सकुचाती है, लजाती है
बर बरनी	:	गोरे रंग वाली, श्रेष्ठ वर्ण (रंग) वाली
मृगनयनी	:	हिरन के समान चंचल नेत्रों वाली
पिकबयनी	:	कोयल की वाणी के समान मधुर वाणी वाली
बदन	:	मुख
बाँकी	:	तिरछी, टेढ़ी
सयननि	:	संकेतों से, इशारों से
ग्राम बधूटी	:	गाँव की स्त्रियाँ
रतन रासि	:	हीरे-मोती आदि का खज़ाना
जब लगि महि अहि सीस	:	जब तक पृथ्वी शेषनाग के सिर पर विद्यमान है
छोहू	:	कृपा, स्नेह
बहोरी	:	फिर से
परितोषी	:	प्रसन्न किया
जनु कुमुदिनीं कौमुदीं पोषीं	:	मानो चाँदनी ने कुमुदिनी के फूलों को खिला दिया हो
मगु	:	मार्ग
बारी	:	वारि, जल, अश्रु
मलीने	:	उदास

सोधि	:	विचारकर
सरुज	:	रोगी, रोगयुक्त
रूख कलपतरु	:	कल्पतरु, समस्त इच्छाओं को पूरा कर देने वाला वृक्ष, समुद्र मंथन से निकले चौदह रत्नों में से एक
बादि	:	व्यर्थ में
डासि	:	बिछाकर
जटिल	:	जटाओं वाले
सुठि	:	सुंदर, अच्छा
सुधादि असन	:	अमृत के समान श्रेष्ठ भोजन
गोचर	:	इंद्रियों (आँख, जिह्वा, नाक, कान और त्वचा) के विषय (रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श)
विधि-मनु	:	ब्रह्मा के मन में
पटतर जोग	:	समानता के योग्य
पुन्य पुंज	:	पुण्यों का समूह



बिहारी लाल

महाकवि बिहारी का जन्म सन 1600 में ग्वालियर में हुआ था। जब वे आठ वर्ष के थे, तभी उनके माता-पिता ओरछा राज्य में जा बसे। वहाँ बिहारी ने संस्कृत का अध्ययन प्रारंभ किया। काव्य-रचना में रुचि होने के कारण उन्होंने संस्कृत-काव्य-ग्रंथों का अध्ययन किया। इसी समय वे तत्कालीन कवि और काव्य-शास्त्र के आचार्य केशवदास के संपर्क में आए, जिनसे उन्होंने काव्य-रचना की दीक्षा ली।

कुछ समय बाद वे आगरा चले आए, जहाँ उन्होंने फ़ारसी का अध्ययन किया। आगरा में उनकी भेंट कवि रहीम से भी हुई। रहीम ने नवयुवक बिहारी की रचनाओं से प्रसन्न होकर उन्हें पुरस्कृत किया।

शाहजहाँ ने बिहारी की काव्य-प्रतिभा से प्रभावित होकर उन्हें उत्साहित किया। बिहारी की प्रतिभा को सम्मानित करने के लिए राजस्थान, जोधपुर, बूँदी जैसी अनेक रियासतों ने उन्हें वृत्ति भी प्रदान की। बाद में वे जयपुर राज्य के महाराज जयसिंह के दरबारी कवि बन गए। वहाँ उन्हें महाराज रोज़ एक अशरफ़ी प्रदान करते थे। जयपुर में रहकर बिहारी अपनी काव्य प्रतिभा से राजा का मनोरंजन भी करते थे और साथ ही अपनी काव्य प्रतिभा को भी निखारने में संलग्न रहते थे। बिहारीलाल की मृत्यु सन 1663 में हुई।

बिहारी ने केवल एक ही ग्रंथ की रचना की– **बिहारी सतसई**। इस ग्रंथ में लगभग सात सौ दोहे हैं। दोहा जैसे छोटे से छंद में गहरी अर्थव्यंजना के कारण कहा जाता है कि बिहारी गागर में सागर भरने में निपुण थे। उनके दोहों के अर्थगांभीर्य को देखकर कहा जाता है–

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर ।

देखन में छोटे लगै, घाव करें गंभीर ॥

बिहारी की ब्रजभाषा मानक ब्रजभाषा है। सतसई में मुख्यतः प्रेम और भक्ति के सारगर्भित दोहे हैं। इसमें अनेक दोहे नीति संबंधी हैं। यहाँ सतसई के कुछ दोहे दिए जा रहे हैं।

बिहारी मुख्य रूप से शृंगारपरक दोहों के लिए जाने जाते हैं, किंतु उन्होंने लोक-व्यवहार, नीति, ज्ञान आदि विषयों पर भी लिखा है। संकलित दोहों में सभी प्रकार की छटाएँ हैं। इन दोहों से आपको ज्ञात होगा कि बिहारी कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक अर्थ भरने की कला में निपुण हैं।

दोहे

नहिं परागु, नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहिं काल ।
अली, कली ही सौं बँध्यौ, आगैं कौन हवाल ।।

लिखन बैठि जाकी सबी, गहि गहि गरब गरूर ।
भए न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर ।।

कागद पर लिखत न बनत, कहत सँदेसु लजात ।
कहिहै सबु तेरौ हियौ, मेरे हिय की बात ।।

लौनैं मुहुँ दीठि न लगै, यौं कहि दीनौ ईठि ।
दूनी ह्वै लागन लगी, दियैं दिठौना, दीठि ।।

कीनैं हूँ कोरिक जतन, अब कहिं काढ़ै कौनु ।
भो मन मोहन-रूप मिलि, पानी मैं कौ लौनु ।।

मरतु प्यास पिंजरा पर्‌यौ, सुआ समै कैं फेर ।
आदरु दै दै बोलियतु, बायसु बलि की बेर ।।

मीत, न नीति, गलीतु ह्वै, जौ धरियै धनु जोरि ।
खाएँ खरचैं जौ जुरै, तो जोरियै करोरि ।।

अति अगाधु, अति औथरौ नदी, कूप, सरु, बाइ ।
सो ताकौ सागरु, जहाँ जाकी प्यास बुझाइ ।।

पत्रा हीं तिथि पाइयै, वा घर कैं चहुँ पास ।
नितप्रति पून्यौईं रहै, आनन-ओप उजास ।।

मानहु बिधि तन-अच्छछबि स्वच्छ राखिबैं काज ।
दृग-पग-पोंछन कौं करे भूषन पायंदाज ।।

तो पर वारौं उरबसी, सुनि, राधिके सुजान ।
तू मोहन कैं उर बसी, ह्वै उरबसी-समान ।।

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. चतुर चित्रकारों के क्रूर हो जाने का कारण कवि ने क्या माना है?
2. कवि के विचार से धन-संग्रह कब किया जाना चाहिए?
3. उथला तालाब भी 'सागर' कब हो जाता है?
4. 'सुंदरी के घर के आसपास सदा पूर्णिमा तिथि ही रहती है'– कवि के इस कथन का क्या आशय है?

लिखित

1. 'अली, कली ही सौं बँध्यौ, आगे कौन हवाल'
   उपर्युक्त पंक्ति में निहित व्यंजना को स्पष्ट कीजिए।
2. जिस संदेश को न तो कागज़ पर लिखा जा सकता है और न कहा जा सकता है, उसे नायक स्वयं ही कैसे समझ सकता है?
3. नज़र लगने से बचाने के लिए दिठौना देने पर नज़र और अधिक क्यों लगने लगी?
4. 'मन से मोहन को निकाला नहीं जा सकता' – इस भाव को व्यक्त करने के लिए कवि ने क्या कारण दिया है?

5. सुंदरी के आभूषणों को 'पायंदाज' कहने के पीछे निहित सौंदर्य को स्पष्ट कीजिए।

6. उन दोहों को उद्धृत कीजिए जिनका आशय है–

   (क) समय पड़ने पर उसे भी सम्मान दिया जाता है, जिसका प्रायः अनादर होता है।
   (ख) जिसकी प्यास जहाँ बुझे, उसके लिए वही सागर के समान होता है ।

7. कविता में जब कोई बात संबोधित किसी और को की जाती है और मुख्य व्यंजना किसी अन्य के लिए होती है, तो उसे 'अन्योक्ति' कहते हैं, अर्थात अन्योक्ति में प्रस्तुत की अपेक्षा अप्रस्तुत अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। बिहारी के दोहों में से अन्योक्ति के दो उदाहरण लिखिए।

8. निम्नलिखित पंक्तियों में निहित अलंकारों के नाम लिखिए–

   (क) गहि गहि गरब गरूर।
   (ख) तू मोहन कैं उर बसी, ह्वै उरबसी-समान ॥
   (ग) दृग-पग-पोंछन कौं करे भूषन पायंदाज ॥
   (घ) पत्रा ही तिथि पाइयै, वा घर कैं चहुँ पास ।
   नितप्रति पून्यौई रहै, आनन-ओप उजास ॥

9. **भाव स्पष्ट कीजिए**

   (क) लिखन बैठि जाकी सबी, गहि-गहि गरब गरूर ।
   भए न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर ॥

   (ख) कीनैं हूँ कोरिक जतन, अब कहिं काढ़ै कौनु ।
   भो मन मोहन-रूप मिलि, पानी मैं कौ लौनु ॥

योग्यता-विस्तार

बिहारी के संकलित दोहों से मिलते-जुलते भावों वाले रहीम और वृंद के कुछ दोहों का संकलन कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

अली : भौंरा

सबी : छवि, चित्र

चितेरा	:	चित्रकार
कूर	:	क्रूर, कठोर, निर्मम
लोनैं	:	सलोना, सुंदर
ईठि	:	इष्ट, सखी
कोरिक (कोटिक)	:	करोड़ों
जतन (यत्न)	:	कोशिश, प्रयत्न
सुआ	:	तोता
बायसु	:	कौवा
पत्रा	:	पंचांग, तिथि आदि बताने वाली पत्रिका
ओथरौ	:	उथला, कम गहरा
पून्यौ	:	पूर्णमासी, शुक्ल पक्ष की पंद्रहवां तिथि
गलीतु	:	गलीत, गिरा हुआ, दुर्दशा को प्राप्त
बाइ	:	बावड़ी, एक प्रकार का चौड़ा कुआँ, जिसमें नीचे जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हों
पायंदाज	:	पापोश, एक प्रकार की चटाई जो पाँव पोंछने के काम आती है
दिठौना	:	यह विश्वास है कि सुंदर मुख पर काजल लगाने से किसी की बुरी नज़र नहीं लगती, उस काले टीके को दिठौना कहते हैं
बायसु बलि की बेर	:	कुछ अवसरों पर कौवों को बुला-बुला कर भोजन दिया जाता है, इसे कौवे को बलि देना (काग-बलि) कहा जाता है
उर्वशी	:	एक अप्रतिम सुंदरी, एक अप्सरा

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का जन्म पश्चिम बंगाल के महिषादल रियासत में सन 1896 में हुआ। इनका परिवार मूल रूप से उत्तर प्रदेश के उन्नाव ज़िले का निवासी था। सूर्यकांत की प्रारंभिक शिक्षा महिषादल में हुई। उन्होंने संस्कृत और अंग्रेज़ी का अध्ययन घर पर ही किया। बंगाल में रहने के कारण बँगला भाषा इनके लिए मातृभाषा जैसी ही थी। हिंदी तो उन्होंने 'सरस्वती' और 'मर्यादा' पत्रिकाओं की पुरानी प्रतियों से सीखी और उसमें इतनी दक्षता प्राप्त कर ली कि वह मातृभाषा के समान ही उनकी सहज भाषा बन गई। किशोरावस्था से ही निराला में काव्य-रचना की रुचि झलकने लगी थी। इस बीच निराला पर अनेक पारिवारिक विपत्तियाँ भी आईं। कुछ ही वर्षों के अंतराल में परिवार के अनेक सदस्यों का असामयिक निधन हो गया। इस सब को झेलते हुए निराला कवि-कर्म में जुटे रहे। उन्होंने पहले 'समन्वय', फिर 'मतवाला' और उसके बाद 'सुधा' पत्रिकाओं का संपादन किया, किंतु अत्यधिक स्वाभिमानी और क्रांतिकारी स्वभाव के कारण वे कहीं टिककर नहीं रह सके। सन 1961 में निराला का निधन हो गया।

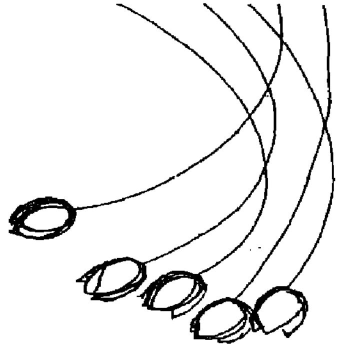
निराला की प्रसिद्ध काव्य रचनाएँ हैं– **अनामिका, परिमल, गीतिका, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता, बेला, अणिमा, अपरा, नगे पत्ते**।

काव्य-रचनाओं के अतिरिक्त उन्होंने गद्य साहित्य की अनेक विधाओं में रचना की। उनमें **लिली, चतुरी चमार, सुकुल की बीवी** (कहानी- संग्रह), **अप्सरा, अलका, प्रभावती, निरुपमा** (उपन्यास), **प्रबंध पद्य** (निबंध संग्रह) उल्लेखनीय हैं।

निराला पुरातन रूढ़ियों के विरोधी और नूतनता के समर्थक थे। हिंदी कविता को छंद, भाषा, शैली और भाव व्यंजना की दृष्टि से पुरातन रूढ़ियों से मुक्तकर नवीन दिशा देने में निराला का ऐतिहासिक योगदान रहा है। प्रारंभ में उनकी क्रांतिकारिता का विरोध भी हुआ। 'जुही की कली', 'सरोज स्मृति', 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' आदि निराला की कुछ कविताएँ भाषा और भावाभिव्यंजना की दृष्टि से हिंदी की श्रेष्ठ रचनाओं में गिनी जाती हैं।

बादल-राग कविता में कवि ने बादल का आह्वान करते हुए इस जगती को भीतर और बाहर से जलमय करने का आग्रह किया है। कवि ने ऐसे शब्दों का चयन किया है, जिनके नाद-सौंदर्य से बादल की गर्जन-तर्जन और उथल-पुथल मचा देने वाला उसका रूप साकार हो उठा है।

भिक्षुक कविता में निराला के प्रगतिशील रूप की झलक मिलती है। दो बच्चों के साथ भीख माँगते हुए दीन-हीन और निरीह भिखारी के चित्र को उकेरने में कवि ने जैसे अपने हृदय की समस्त करुणा उँडेल दी है। भिखारी और कुत्तों के बीच प्रतिद्वंद्विता इंगित कर कवि ने सामाजिक विषमता पर व्यंग्य किया है।



1. बादल-राग

झूम-झूम मृदु गरज-गरज घन घोर !
राग-अमर ! अंबर में भर निज रोर !
झर झर झर निर्झर-गिरि-सर में
घर, मरु, तरु-मर्मर, सागर में,
सरित तड़ित-गति चकित पवन में
मन में, विजन-गहन-कानन में,
आनन-आनन में, रव-घोर-कठोर
राग-अमर ! अंबर में भर निज रोर !

अरे वर्ष के हर्ष !
बरस तू ,बरस-बरस रसधार !
पार ले चल तू मुझको,
बहा, दिखा मुझको भी निज
गर्जन-गौरव-संसार !
उथल-पुथल कर हृदय–
मचा हलचल–
चल रे चल,–
मेरे पागल बादल !
धँसता दलदल,

हँसता है नद खल्-खल्
बहता,कहता कुलकुल कलकल कलकल ।
देख-देख नाचता हृदय
बहने को महाविकल–बेकल,
इस मरोर से– इसी शोर से–
सघन घोर गुरु गहन रोर से
मुझे गगन का दिखा सघन वह छोर !
राग अमर ! अंबर में भर निज रोर !

2. भिक्षुक

वह आता –
दो टूक कलेजे के करता,पछताता
पथ पर आता।

पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी-भर दाने को–भूख मिटाने को,
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता–
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता ।

साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए,
बाएँ से वे मलते हुए पेट को चलते,
और दाहिना दया-दृष्टि पाने की ओर बढ़ाए।

भूख से सूख ओंठ जब जाते
दाता – भाग्य-विधाता से क्या पाते?
घूँट आँसुओं के पीकर रह जाते।
चाट रहे जूठी पत्तल वे सभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।

प्रश्न-अभ्यास

1.बादल-राग

मौखिक

1. कवि ने बादल-राग को अमर राग क्यों कहा है?
2. कवि बादल के पागल रूप का आह्वान क्यों करता है?

लिखित

1. कवि बादल से किन-किन को जलमय करने का आग्रह करता है?
2. कवि ने बादल को 'अरे वर्ष के हर्ष' रूप में क्यों संबोधित किया है?
3. निम्नलिखित पंक्तियों के काव्य-सौंदर्य को स्पष्ट कीजिए –

   (क) झूम झूम मृदु गरज-गरज घन घोर !
   झर झर झर निर्झर- गिरि-सर में

   (ख) उथल-पुथल कर हृदय.........कलकल कलकल।

योग्यता-विस्तार

1. निराला ने एक अन्य 'बादल-राग' कविता की भी रचना की है। उसे पढ़िए और प्रस्तुत बादल-राग से उसकी तुलना कीजिए।

2. सुमित्रानंदन पंत की 'बादल' और केदारनाथ सिंह की 'बादल ओ' कविताओं को खोजकर पढ़िए।

2. भिक्षुक

मौखिक

1. 'कलेजे के दो टूक करने' का आशय स्पष्ट कीजिए।
2. भीख माँगने के लिए सड़क की ओर आते भिखारी के पछताने का क्या कारण हो सकता है?
3. भिखारी के बच्चों से कुत्ते किसलिए होड़ करते हैं?

लिखित

1. कविता के आधार पर भिखारी की दीन-हीन मुद्रा का शब्दचित्र अपने शब्दों में प्रस्तुत कीजिए।
2. भिखारी के साथ आए बच्चे आँसुओं के घूँट पीकर क्यों रह जाते हैं?
3. प्रस्तुत कविता में भारतीय सामाजिक विषमता का जो चित्र उपस्थित हुआ है, उसका वर्णन अपने शब्दों में लिखिए।

योग्यता-विस्तार

1. सुमित्रानंदन पंत ने 'वह बुड्ढा' शीर्षक कविता की रचना की है। उसे खोजकर पढ़िए और प्रस्तुत कविता से उसकी तुलना कीजिए।
2. 'भीख माँगने पर प्रतिबंध लगाना उचित है'– विषय पर एक वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

बादल-राग

मरु : रेगिस्तान

मर्मर : पत्तों की सरसराहट

तड़ित-गति : बिजली की-सी तेज़ गति

विजन	:	निर्जन, एकांत
आनन	:	मुँह
रोर	:	कोलाहल, शोर
खल्-खल् **कुलकुल** **कलकल**	:	नदी के बहने का स्वर
महाविकल	:	बहुत बेचैन
मरोर	:	ऐंठन
गहन	:	घना, गहरा

भिक्षुक

लकुटिया	:	छड़ी

रामधारी सिंह 'दिनकर'

रामधारी सिंह 'दिनकर' का जन्म सन 1908 में बिहार के मुंगेर ज़िले में सिमरिया ग्राम में हुआ। पटना विश्वविद्यालय से बी.ए. ऑनर्स करने के बाद वे अध्यापक हो गए, फिर सीतामढ़ी में सब-रजिस्ट्रार के पद पर कार्य किया। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय वे बिहार के जनसंपर्क विभाग में चले गए और बाद में जनसंपर्क निदेशक नियुक्त हुए। सन 1952 में वे संसद-सदस्य बने। कुछ समय के लिए वे भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति भी रहे। सन 1965 में केंद्रीय सरकार के हिंदी सलाहकार पद पर नियुक्त हुए। सन 1974 में उनकी मृत्यु हो गई।

दिनकर को पद्मभूषण से अलंकृत किया गया था। उन्हें साहित्य अकादमी और भारतीय ज्ञानपीठ के पुरस्कारों से भी सम्मानित किया गया। साहित्य की गद्य और पद्य दोनों विधाओं में उनका समान अधिकार था। हिंदी काव्य जगत पर छाए छायावादी कुहासे को काटने वाली शक्तियों में दिनकर की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

दिनकर की प्रमुख रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं–

काव्य : रेणुका, हुंकार, सामधेनी, उर्वशी, परशुराम की प्रतीक्षा, रश्मिरथी, रसवंती, द्वंद्वगीत, कुरुक्षेत्र, धूप-छाँव, बापू-दर्शन।

गद्य : संस्कृति के चार अध्याय, मिट्टी की ओर, कविता की खोज, काव्य की भूमिका, अर्धनारीश्वर।

सन 1962 में भारत पर चीनी आक्रमण के बाद सोए हुए भारतीय पौरुष को जगाने के लिए दिनकर ने **'परशुराम की प्रतीक्षा'** की रचना की थी। इसमें कवि ने यह संदेश देना चाहा है कि जब देश पर संकट के बादल गहरा रहे हों और स्वतंत्रता संकट में हो, तो परशुराम जैसे योद्धा और विजेता की आवश्यकता होती है। इसी प्रसंग में कवि क्षमा, दया, अहिंसा जैसी भावनाओं के स्थान पर बाहुबल, वीरता और बलिदान को वरीयता देने का आग्रह करता है।

परशुराम की प्रतीक्षा

(1)

वैराग्य छोड़ बाँहों की विभा सँभालो,
चट्टानों की छाती से दूध निकालो।
है रुकी जहाँ भी धार, शिलाएँ तोड़ो,
पीयूष चंद्रमाओं को पकड़ निचोड़ो।
चढ़ तुंग शैल-शिखरों पर सोम पियो रे !
योगियों नहीं, विजयी के सदृश जियो रे !

(2)

छोड़ो मत अपनी आन, सीस कट जाए,
मत झुको अनय पर, भले व्योम फट जाए।
दो बार नहीं यमराज कंठ धरता है,
मरता है जो, एक ही बार मरता है।
तुम स्वयं मरण के मुख पर चरण धरो रे !
जीना हो तो मरने से नहीं डरो रे !

(3)

स्वातंत्र्य जाति की लगन, व्यक्ति की धुन है,
बाहरी वस्तु यह नहीं, भीतरी गुण है।

नत हुए बिना जो अशनि-घात सहती है,
स्वाधीन जगत में वही जाति रहती है ।
वीरत्व छोड़ पर का मत चरण गहो रे !
जो पड़े आन, खुद ही सब आग सहो रे !

(4)

स्वर में पावक यदि नहीं, वृथा वंदन है,
वीरता नहीं, तो सभी विनय क्रंदन है ।
सिर पर जिसके असिघात, रक्त-चंदन है,
भ्रामरी उसी का करती अभिनंदन है ।
दानवी रक्त से सभी पाप धुलते हैं,
ऊँची मनुष्यता के पथ भी खुलते हैं ।

(5)

उद्देश्य जन्म का नहीं कीर्ति या धन है,
सुख नहीं, धर्म भी नहीं, न तो दर्शन है,
विज्ञान,ज्ञान-बल नहीं, न तो चिंतन है,
जीवन का अंतिम ध्येय स्वयं जीवन है ।
सब से स्वतंत्र यह रस जो अनघ पिएगा,
पूरा जीवन केवल वह वीर जिएगा ।

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. किस स्वभाव के लोग संसार में स्वाधीन बने रहते हैं?
2. किन गुणों के बिना वंदना और विनम्रता जैसे गुण व्यर्थ हो जाते हैं?
3. उन पंक्तियों को पढ़कर सुनाइए, जिनका आशय है–

   (क) चाहे कुछ भी आ पड़े उसे स्वयं सहन करना चाहिए।

   (ख) बलिदानी वीर मृत्यु की चिंता नहीं करते।
4. दुर्गा कैसे लोगों का अभिनंदन करती है?

लिखित

1. विजयी के सदृश जीने के लिए कवि ने भारतीय युवाओं से क्या अपेक्षाएँ की हैं?
2. स्वतंत्रता के बारे में कवि के क्या विचार हैं?
3. कवि ने स्वतंत्रता को भीतरी गुण क्यों कहा है?
4. कवि की दृष्टि में कौन व्यक्ति सही अर्थों में जीवन जीता है?
5. कवि ने जीवन का अंतिम ध्येय किसे माना है?
6. कैसा व्यक्ति जीवन को संपूर्णता में जी सकता है?
7. **भाव स्पष्ट कीजिए**

   वैराग्य छोड़ बाँहों की विभा सँभालो,
   चट्टानों की छाती से दूध निकालो ।
   है रुकी जहाँ भी धार, शिलाएँ तोड़ो,
   पीयूष चंद्रमाओं को पकड़ निचोड़ो ।

योग्यता-विस्तार

1. 'दिनकर' की 'शक्ति और क्षमा' कविता के भावों की तुलना प्रस्तुत कविता से कीजिए।
2. इस कविता का ओजपूर्ण स्वर में वाचन कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

पीयूष	:	अमृत
सोम	:	एक प्रकार की दिव्य औषधि—सोमरस, अमृत
अनय	:	अन्याय
अशनि-घात	:	वज्र की चोट, गंभीर आघात
आन	:	मर्यादा
जो पड़े आन	:	जो कभी कष्ट आ पड़े, जब विपत्तियों का सामना हो
पावक	:	आग
वृथा	:	व्यर्थ, निष्प्रयोजन
क्रंदन	:	तीव्र विलाप, रुदन
असिघात	:	तलवार की चोट
रक्त चंदन	:	खून का टीका
भ्रामरी	:	दुर्गा, शक्ति की देवी
अनघ	:	निष्पाप, पुण्यात्मा
बाँहों की विभा संभालना	:	भुजाओं को शक्तिशाली बनाने का प्रयास करना, शक्तिशाली बनना
चट्टानों की छाती से दूध निकालना	:	बड़ी-बड़ी बाधाओं पर सफलता प्राप्त करना
चंद्रमाओं को निचोड़कर पीयूष निकालना	:	सौंदर्य और मधुरता को एकत्र करना

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' का जन्म कुशीनगर (कसया) में सन 1911 में हुआ। इनके पिता हीरानंद शास्त्री पुरातत्त्वज्ञ थे। इनकी आरंभिक शिक्षा घर पर ही हुई। इन्होंने सन 1925 में मैट्रिक और 1929 में बी.एससी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन 1930 में क्रांतिकारी आंदोलन में भाग लेने के कारण इनको गिरफ़्तार किया गया और कारावास की यातना सहनी पड़ी। अज्ञेय जी ने अनेक पत्र-पत्रिकाओं का संपादन भी किया। उन्होंने 'प्रतीक', 'दिनमान' तथा 'नवभारत टाइम्स' के संपादक के पद पर भी काम किया। सन 1960 में वे केलीफोर्निया विश्वविद्यालय में भारतीय साहित्य तथा संस्कृति के अध्यापक भी रहे। 'आँगन के पार द्वार' पर इन्हें 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार तथा 'कितनी नावों में कितनी बार' रचना पर 'भारतीय ज्ञानपीठ' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। अप्रैल सन 1987 को अज्ञेय जी का देहांत हो गया।

अज्ञेय जी का कृतित्व बहुमुखी है। उनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं–

काव्य-संग्रह: भग्नदूत, चिंता, इत्यलम, हरी घास पर क्षण भर, बावरा अहेरी, इंद्रधनुष रौंदे हुए ये, आँगन के पार द्वार तथा **कितनी नावों में कितनी बार।**

उपन्यास: शेखर एक जीवनी (दो भाग) **,नदी के द्वीप, अपने-अपने अजनबी।**

कहानी-संग्रह: विपथगा, परंपरा, कोठरी की बात, शरणार्थी, ये तेरे प्रतिरूप।

निबंध: त्रिशंकु, सबरंग, आत्मनेपद, स्मृतिलेखा, लिखि कागद कोरे आदि।

यात्रावृत्त: अरे यायावर रहेगा याद?, एक बूँद सहसा उछली।

अज्ञेय प्रयोगवादी कवि थे, इसीलिए प्रयोगवाद की सभी विशेषताएँ उनके काव्य में मिलती हैं। आज की हिंदी कविता पर अज्ञेय की अद्वितीय काव्य-प्रतिभा की गहरी छाप है। अज्ञेय ने जो भी लिखा है, वह अपने ढंग का अनूठा है।

मानवीय व्यक्तित्व की समस्या अज्ञेय के काव्य के मूल में रही है। अज्ञेय की कविता उन्हीं की तरह बोलती कम और सोचती अधिक है। उनकी स्वातंत्र्योत्तर कविताओं में अनेक स्थलों

पर शोषण, देश एवं सभ्यता, दफ़्तर के जीवन आदि पर तीखा व्यंग्य है। 'अरी ओ करुणा प्रभामय', 'हरा भरा है देश', 'औद्योगिक बस्ती' तथा 'बिकाऊ' कविताओं में समाज, देश एवं सभ्यता पर आलोचनात्मक टिप्पणियाँ हैं।

नए उपमानों, प्रतीकों, बिंबों एवं शब्दों से नई कविता के शिल्प को संपन्न बनाने का श्रेय भी अज्ञेय को है। इनकी भाषाशैली तत्समनिष्ठ, परिमार्जित, प्रौढ़ तथा विषय के अनुकूल है।

मैं वहाँ हूँ कविता में मानवी दृष्टि से कवि और कवि-कर्म की सार्थकता का चित्रण हुआ है। कवि मनुष्य के विभिन्न रूपों (कर्मकर, श्रमिक, शिल्पी और स्रष्टा) और वर्तमान तथा भविष्य के बीच सेतु का कार्य कर मनुष्य-मनुष्य के बीच की दूरी को मिटाकर मानवी-एकता को स्थापित करता है। मनुष्य-मनुष्य के बीच की आस्था, साधना, व्यथा, गाथा और जीवन-संघर्ष के बलपर ही ऐसा कर पाना संभव है। वह वर्तमान से पलायन नहीं करता, किंतु उसकी दृष्टि दूर भविष्य के निर्माण पर टिकी होती है। यह कविता जीवन-संघर्ष में पिसकर भी कभी न हारने वाले मनुष्य की कथा है। जन-समूह का अनुभव उसे मज़बूती देता है और युगानुरूप नित नए रूपों में बदलती परंपरा उसे शक्ति देती है।

मैं वहाँ हूँ

दूर दूर दूर ... मैं वहाँ हूँ !
यह नहीं कि मैं भागता हूँ:
मैं सेतु हूँ—
जो है और जो होगा दोनों को मिलाता हूँ—
मैं हूँ, मैं यहाँ हूँ,
पर सेतु हूँ , इसलिए
दूर दूर दूर... मैं वहाँ हूँ !
यह जो मिट्टी गोड़ता है
कोदई खाता है और गेहूँ खिलाता है
उसकी मैं साधना हूँ ।
यह जो मिट्टी फोड़ता है
मड़िया में रहता और महलों को बनाता है
उसकी मैं आस्था हूँ ।
यह जो कज्जल-पुता खानों में उतरता है
पर चमाचम विमानों को आकाश में उड़ाता है
यह जो नंगे बदन, दम साध पानी में धँसता है
और बाज़ार के लिए पानीदार मोती निकाल लाता है,
यह जो कलम घिसता है

चाकरी करता है, पर सरकार को चलाता है
उसकी मैं व्यथा हूँ।
यह जो कचरा ढोता है,
यह जो झल्ली लिए फिरता है और बेघरा घूरे पर सोता है,
यह जो गदहे हाँकता है,
यह जो तंदूर झोंकता है,
यह जो कीचड़ उलीचती है,
यह जो मनियार सजाती है,
यह जो कंधे पर चूड़ियों की पोटली लिए गली-गली झाँकती है,
यह जो दूसरों का उतरन फींचती है,
यह जो रद्दी बटोरता है,
यह जो पापड़ बेलता है, बीड़ी लपेटता है, वर्क कूटता है,
धौंकनी फूँकता है, कलई गलाता है, रेढ़ी ठेलता है,
चौक लीपता है, बासन माँजता है, ईंटें उछालता है,
रुई धुनता है, गारा सानता है, खटिया बुनता है,
मशक से सड़क सींचता है,
रिक्शा में अपना प्रतिरूप लादे खींचता है,
जो भी जहाँ भी पिसता है
पर हारता नहीं, न मरता है–
पीड़ित श्रमरत मानव
अविजित दुर्जेय मानव
कर्मकर, श्रमकर, शिल्पी, स्रष्टा–
उसकी मैं कथा हूँ।

दूर दूर दूर... मैं वहाँ हूँ–
यह नहीं कि मैं भागता हूँ :
मैं सेतु हूँ–
जो है और जो होगा, दोनों को मिलाता हूँ–
पर सेतु हूँ इसलिए
दूर दूर दूर...मैं वहाँ हूँ

किंतु मैं वहाँ हूँ
तो ऐसा नहीं कि मैं यहाँ नहीं हूँ ।
मैं दूर हूँ, जो है और जो होगा उसके बीच सेतु हूँ
तो ऐसा नहीं है कि जो है उसे मैंने स्वीकार कर लिया है ।

मैं आस्था हूँ
तो मैं निरंतर उठने की शक्ति हूँ ,
मैं व्यथा हूँ
तो मैं मुक्ति का श्वास हूँ ,
मैं गाथा हूँ
तो मैं मानव का अलिखित इतिहास हूँ ,
मैं साधना हूँ
तो मैं प्रयत्न में कभी शिथिल न होने का निश्चय हूँ ,
मैं संघर्ष हूँ जिसे विश्राम नहीं,
जो है मैं उसे बदलता हूँ ,
जो होगा उसे मुझे ही तो लाना है
जो मेरा कर्म है, उसमें मुझे संशय का नाम नहीं,

वह मेरा अपनी साँस-सा पहचाना है,
लेकिन घृणा–घृणा से मुझे काम नहीं
क्योंकि मैंने डर नहीं जाना है ।
मैं अभय हूँ,
मैं भक्ति हूँ,
मैं जय हूँ ।

दूर दूर दूर ... मैं सेतु हूँ
किंतु शून्य से शून्य तक का सतरंगी सेतु नहीं,
वह सेतु
जो मानव से मानव का हाथ मिलने से बनता है,
जो हृदय से हृदय को
श्रम की शिखा से श्रम की शिखा को
कल्पना के पंख से कल्पना के पंख को
विवेक की किरण से विवेक की किरण को
अनुभव के स्तंभ से अनुभव के स्तंभ को मिलाता है,
जो मानव को एक करता है,
समूह का अनुभव जिसकी मेहराबें हैं
और जन-जीवन की अजस्र प्रवाहमयी नदी जिसके नीचे से बहती है
मुड़ती, बल खाती,
नए मार्ग को फोड़ती
नए कगारे तोड़ती,
चिरपरिवर्तनशीला, सागर की ओर जाती, जाती, जाती...
मैं वहाँ हूँ–दूर, दूर, दूर !

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. कविता में 'मैं' का प्रयोग किसके लिए हुआ है?
2. कवि यहाँ भी है और वहाँ भी है, क्योंकि—

   (क) वह ईश्वर है

   (ख) वह सेतु है

   (ग) वह वायु है

   (घ) वह आकाश है
3. कवि ने किन पंक्तियों में सफ़ाई कर्मचारी, फेरीवाला, कुम्हार आदि विभिन्न मज़दूरों और व्यवसायियों का उल्लेख किया है?
4. कवि ने श्रमिकों की क्या विशेषताएँ बताई हैं?
5. 'जो है और जो होगा' के विषय में कवि क्या निश्चय प्रकट करता है?
6. हमारी जीवन-धारा सतत परिवर्तनशील और गतिशील है, यह भाव कविता की किन पंक्तियों में व्यंजित हुआ है?

लिखित

1. कविता में सेतु किन-किन को जोड़ने का कार्य कर रहा है?
2. किसान, मज़दूर, खनिक, गोताखोर और नौकरशाह के जीवन की किन विडंबनाओं का उल्लेख कविता में हुआ है?
3. किसान, भवन-निर्माता, मज़दूर और नौकरशाह से कवि अपने को किन रूपों में जोड़ता है?
4. आस्था, व्यथा और गाथा का कवि की दृष्टि में क्या आशय है?
5. कवि जीवन में साधना, संघर्ष और कर्म के माध्यम से किन कर्तव्यों के प्रति हमें जगाना चाहता है?

6. जन-जीवन को 'अजस्र प्रवाहमयी नदी' क्यों कहा गया है?

7. **आशय स्पष्ट कीजिए**

   किंतु मैं वहाँ हूँ
   तो ऐसा नहीं कि मैं यहाँ नहीं हूँ।

योग्यता-विस्तार

1. अपने आस-पास विभिन्न प्रकार का काम करने वाले कामगारों के जीवन पर एक लघु लेख लिखिए।
2. देवराज दिनेश की 'मज़दूर' कविता ढूँढ़कर पढ़िए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

कोदई	:	एक प्रकार का मोटा अनाज, कोदो
मड़िया	:	फूस का मकान
कज्जल-पुता	:	कलौंस (कालिमा) से पुता
पानीदार	:	चमकदार
बेघरा	:	जिसका कोई घर-बार न हो
मनियार	:	चूड़ी, बिंदी, टिकुली आदि की दुकान (वाला)
फींचती है	:	कपड़े आदि पछाड़कर धोती है
वर्क	:	वरक, कूट-कूटकर बनाया गया सोने-चाँदी का बहुत पतला पत्तर
अविजित	:	जिसे जीता न गया हो
दुर्जेय	:	जिसे जीतना कठिन हो
शिल्पी	:	शिल्पकार, कारीगर
स्रष्टा	:	रचनाकार, सृष्टि करनेवाला, निर्माता

विवेक :	सद्विचार की योग्यता, भले-बुरे की पहचान
मेहराब :	द्वार के ऊपर की धनुषाकार बनावट, डाट वाला गोल दरवाज़ा
करारे :	किनारा, कगार
यह नहीं कि मैं भागता हूँ :	मैं वर्तमान जीवन की जटिलताओं से बचकर नहीं निकलता
मैं व्यथा हूँ तो मैं मुक्ति का श्वास :	व्यथा मुझे मुक्त रहने और मुक्ति देने की प्रेरणा देती है
जो मेरा कर्म... ...पहचाना है :	जीवन में साँस की तरह कर्म को अनिवार्य मानता हूँ
शून्य से शून्य तक का सतरंगी सेतु नहीं :	काल्पनिक रंग-बिरंगा सेतु नहीं, बल्कि ठोस वस्तुओं, प्राणियों को जोड़ने वाला सेतु हूँ
जन जीवन की... प्रवाहमयी नदी :	नित नए रूप में ढलती जीवनधारा, परंपरा

भारतभूषण अग्रवाल

भारतभूषण अग्रवाल का जन्म सन 1919 में मथुरा (उत्तर प्रदेश) में हुआ। उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी साहित्य में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। पीएच.डी. की उपाधि उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से प्राप्त की। तत्पश्चात कोलकाता से प्रकाशित पत्रिका 'समाज सेवक' का संपादन किया। उन्होंने 1942 से 1947 तक हाथरस की एक मिल में अधिकारी के रूप में कार्य किया। बाद में वे इलाहाबाद से अज्ञेय द्वारा संपादित त्रैमासिक पत्रिका 'प्रतीक' से जुड़ गए। कुछ समय तक आकाशवाणी में कार्य करने के पश्चात सन 1960 से 1974 तक 'साहित्य अकादमी' में सहायक सचिव के रूप में भी कार्य किया। शिमला में सन 1975 में उनकी मृत्यु हुई।

भारतभूषण अग्रवाल की प्रमुख काव्य रचनाएँ हैं– **छवि के बंधन, जागते रहो, तार सप्तक** (सहयोगी संकलन), **मुक्तिमार्ग, ओ अप्रस्तुत मन, कागज़ के फूल, अनुपस्थित लोग, एक उठा हुआ हाथ, उतना वह सूरज है** और **बहुत बाकी है** आदि।

भारतभूषण अग्रवाल ने काव्य रचना के साथ-साथ नाटक, उपन्यास, निबंध, आलोचना और बाल साहित्य आदि गद्य विधाओं में भी प्रचुर मात्रा में लिखा है। मौलिक लेखन के अतिरिक्त उन्होंने रवींद्रनाथ ठाकुर के नाटकों तथा कविताओं का सुंदर अनुवाद भी किया है।

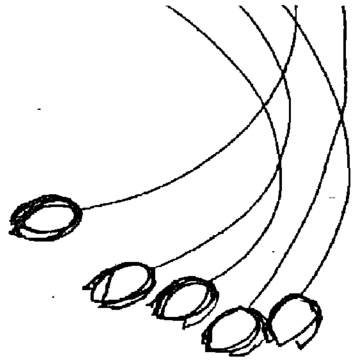
भारतभूषण अग्रवाल के काव्य संग्रह उनके कवि-जीवन के विकास के भिन्न-भिन्न मोड़ों के सूचक हैं। 'छवि के बंधन' में सौंदर्य, प्रेम और विरह की अनुभूतियों के साथ-साथ आधुनिक युग की निराशा तथा पीड़ा आदि प्रवृत्तियाँ अभिव्यक्त हुई हैं। 'जागते रहो' में कवि वैयक्तिकता की संकुचित सीमाओं को लाँघकर व्यापक धरातल पर टिकने का प्रयास करता दिखाई पड़ता है। अपनी अधिकांश कविताओं में उन्होंने मनुष्य की दुर्बलता और क्षुद्रता पर तीखा व्यंग्य किया है।

भाषा पर भारतभूषण अग्रवाल का व्यापक अधिकार था। उनमें विषय एवं भाव के अनुरूप भाषा प्रयोग की अद्भुत क्षमता थी। उनका शब्द-भंडार अत्यंत समृद्ध था, किंतु वे सदैव सरल, स्वाभाविक और परिचित शब्दावली का प्रयोग करना पसंद करते थे।

चुनौती कविता में जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है, नियति (भाग्य) को भुजा उठाकर ललकारा गया है। आत्मज्ञान से मानव को इस सत्य का साक्षात्कार हुआ है और उसे विश्वास

हो गया है कि वह नियति का दास नहीं है। उसे नियति के समक्ष विनम्रतापूर्वक सिर झुकाने की आवश्यकता नहीं है।

बनता तभी प्रपात है एक गीत है। इसमें कवि आघातों को धैर्यपूर्वक चुपचाप सहन करने का परामर्श देता है। वह बताता है कि किसी एक स्थान पर ठहर जाने से काम नहीं चलेगा। इस संसार में वही विजयी होता है, जो परिस्थिति के अनुसार स्वयं को ढालता रहता है। प्रपात बनने के लिए धैर्यपूर्वक शक्ति-संचय कर पानी को रोकनेवाली चट्टान को तोड़ना पड़ता है।



1. चुनौती

खोल सीना, बाँधकर मुट्ठी कड़ी
मैं खड़ा ललकारता हूँ ।
ओ नियति !
तू सुन रही है?
मैं खड़ा तुझको यहाँ ललकारता हूँ !

हाँ, वही मैं
जो कि कल तक कर रहा था चरण में तेरे निवेदित
फूल पूजा के
करुण आँखों को भिगोकर
काँपती उँगलियों की अंजलि सँजोकर ।

हाँ, वही मैं
जो कि कल तक कह रहा था :
तुम्हीं हो सर्वस्व मेरी
और यह जीवन तुम्हारी कृपा-करुणा का भिखारी,
दान दो संजीवनी का, या गरल दो मृत्यु का : स्वीकार है।
विनत शिर, स्वर मंद, कंपित ओष्ठ !

हाँ, वही मैं
आज खोले वक्ष, उन्नत शीश, रक्तिम नेत्र

तुझको दे रहा हूँ, ले, चुनौती
गगनभेदी घोष में
दृढ़ बाहुदंडों को उठाए !

क्योंकि मैंने आज पाया है स्वयं का ज्ञान
क्योंकि मैं पहचान पाया हूँ कि मैं हूँ मुक्त, बंधनहीन
और तू है मात्र भ्रम, मन-जात, मिथ्या वंचना
इसलिए इस ज्ञान के आलोक के पल में
मिल गया है आज मुझको सत्य का आभास
और ओ मेरी नियति !
मैं छोड़कर पूजा
—क्योंकि पूजा है पराजय का विनत स्वीकार —
बाँधकर मुट्ठी तुझे ललकारता हूँ,
सुन रही है तू?
मैं खड़ा तुझको यहाँ ललकारता हूँ !

2. बनता तभी प्रपात है

अपना ही मन खो बैठे जब, औरों की क्या बात है,
सह ले पगले ! चुप हो सह ले, आया जो आघात है।

दुनिया बहुत बड़ी है
जीवन का भी है विस्तार बड़ा,
तू किस भ्रम में युगों-युगों से
इस सराय के द्वार खड़ा?

चलता-फिरता दिन है मूरख ! चलती-फिरती रात है !

गहराई को कौन पूछता
गहरा तो है कूप भी,
पर न पहुँचता वहाँ समीरन
नहीं पहुँचती धूप भी ।

जीत उसी की, जो लहरों का देता रहता साथ है !
बादल का क्या दोष
फोड़ यदि सका न यह चट्टान तू?
पानी तो पानी है, मत कर
यों अपना अपमान तू !

कल्प-कल्प का धैर्य जुटे जब, बनता तभी प्रपात है !
सह ले पगले ! चुप हो सह ले, आया जो आघात है !

प्रश्न-अभ्यास

1.चुनौती

मौखिक

1. कवि किसे चुनौती दे रहा है?
2. कल तक कवि जिस नियति की पूजा करता था, आज अचानक ऐसा क्या हो गया कि कवि ने उसे ही चुनौती दे डाली?
3. कल तक नियति के विषय में कवि की क्या धारणा थी?
4. मुक्त बंधनहीन होने के आत्मज्ञान ने कवि की किस भावना को जगा दिया—

   (क) अहंकार

   (ख) पुरुषार्थ

   (ग) अनुशासनहीनता

   (घ) पराजय

लिखित

1. निम्नलिखित पंक्ति की व्याख्या कीजिए—

   क्योंकि पूजा है पराजय का विनत स्वीकार
2. कवि ने नियति को मन से उत्पन्न भ्रम और मिथ्या वंचना क्यों कहा है?

योग्यता-विस्तार

1. 'जीवन में भाग्य नहीं, पुरुषार्थ ही फलता है'— इस विषय पर अपनी कक्षा में एक वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन कीजिए ।
2. जैनेंद्र का 'भाग्य और पुरुषार्थ' निबंध ढूँढ़कर पढ़िए।
3. प्रस्तुत कविता की तुलना धर्मवीर भारती की निम्नलिखित पंक्तियों से कीजिए—

   जब भी कोई मनुष्य
   अनासक्त होकर

चुनौती देता है इतिहास को
उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है
नियति नहीं है पूर्व निर्धारित
उसे हर क्षण मानव-निर्णय
बनाता मिटाता है ।

2.बनता तभी प्रपात है

मौखिक

1. कविता में 'पगले' का संबोधन किसके लिए हुआ है?
2. 'सराय के द्वार पर खड़े होने से' कवि का क्या आशय है?
3. कविता में 'प्रपात' जीवन की किस विशेषता का प्रतीक है?
   (क) उज्ज्वलता और निष्कपटता का
   (ख) शीतलता और सरसता का
   (ग) निर्मलता और गतिशीलता का
   (घ) सुंदरता और द्रवणशीलता का
4. 'पानी तो पानी है' कहकर कवि ने पानी की किस विशेषता की ओर संकेत किया है?
5. किसी को कोसने के बजाए विघ्न-बाधाओं को दूर कर जीवनधारा का मार्ग प्रशस्त करने की बात किन पंक्तियों में कही गई है?

लिखित

1. कवि की दृष्टि में किस बात से मनुष्य अपमानित होता है?
2. कवि ने जीवन को झरने के समान निर्मल और गतिशील बनाए रखने के लिए क्या संदेश दिया है?
3. गहरा होने पर भी कुआँ प्रकृति के किन-किन वरदानों से वंचित रहता है?
4. निम्नलिखित पंक्तियों की व्याख्या कीजिए—
   (क) जीत उसी की, जो लहरों का देता रहता साथ है,
   (ख) कल्प-कल्प का धैर्य जुटे जब, बनता तभी प्रपात है!

योग्यता-विस्तार

अपनी पुस्तक में दी गई दिनकर की कविता के पहले दो छंदों से प्रस्तुत कविता की तुलना कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

चुनौती

नियति	:	भाग्य, ईश्वर या प्रकृति का विधान जो स्थिर और नियत माना जाता है
अंजलि	:	कर-संपुट, हथेलियों को मिलाने से बनने वाला गहरा स्थल
संजीवनी	:	जीवन दान देने वाली, पुनर्जीवित करने वाली
मिथ्या वंचना	:	झूठा छल, धोखा, भ्रम
विनत	:	विनम्र

बनता तभी प्रपात है

आघात	:	चोट
चट्टान	:	जीवन-धारा में गतिरोध पैदा करने वाली बाधा
कल्प-कल्प का	:	दीर्घ काल का, लंबे समय का (भारतीय काल-गणना पद्धति में एक कल्प चार अरब छत्तीस करोड़ वर्ष का होता है।)
प्रपात	:	झरना, निर्झर

नरेश मेहता

नरेश मेहता का जन्म सन 1922 में मालवा (मध्य प्रदेश) के शाजापुर कस्बे में हुआ था । बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से एम.ए. करने के पश्चात उन्होंने ऑल इंडिया रेडियो इलाहाबाद में कार्यक्रम अधिकारी के रूप में कार्य प्रारंभ किया, तत्पश्चात विभिन्न महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्य करते हुए उन्होंने अनेक साहित्यिक पत्रों का संपादन भी किया।

नरेश मेहता की ख्याति 'दूसरा सप्तक' के प्रमुख कवि के रूप में आरंभ हुई। आगे चलकर वे विविध विधाओं के यशस्वी रचनाकार के रूप में जाने गए। नरेश मेहता को उनके प्रसिद्ध उपन्यास **वह पथ बंधु था** के कारण विशेष प्रसिद्धि मिली। कवि के रूप में आरंभ में वे साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित थे, किंतु बाद में उससे मोहभंग होने पर उन्होंने वैष्णव भावधारा को अपनाया। सनातन मानव मूल्यों में नरेश मेहता की अटूट आस्था थी। सन 2000 में उनका निधन हो गया।

बनपाखी सुनो, बोलने दो चीड़ को तथा **मेरा समर्पित एकांत** नरेश मेहता के प्रसिद्ध काव्य-संग्रह हैं । **संशय की एक रात** उनका प्रसिद्ध खंड काव्य है । उनकी साहित्यिक सेवाओं के लिए उन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया ।

नए कवि के रूप में नरेश मेहता की रचनाओं में दो बातें उभरकर सामने आती हैं – मानव मूल्य और अस्तित्व की खोज तथा आधुनिक संकट से उत्पन्न आशंका और भय की अभिव्यक्ति। मानव के भविष्य के प्रति उनका विश्वास उनकी हर रचना में विद्यमान है। उनकी रचनाओं में सर्वत्र आधुनिकता का स्वर बोलता है तथा शिल्प और अभिव्यंजना के स्तर पर उनमें ताज़गी और नयापन है।

मृत्तिका कविता सीधे-सरल बिंबों के सहारे पुरुषार्थी मनुष्य और मिट्टी के संबंधों पर प्रकाश डालती है। मनुष्य के पुरुषार्थ के बदलते रूपों के अनुरूप मिट्टी कभी माँ, कभी प्रिया, कभी प्रजा और कभी चिन्मयी शक्ति के रूप में ढल जाती है। पुरुषार्थ मिट्टी को दैवी शक्ति में बदल देता है।

मृत्तिका

मैं तो मात्र मृत्तिका हूँ –
जब तुम
मुझे पैरों से रौंदते हो
तथा हल के फाल से विदीर्ण करते हो
तब मैं –
धन-धान्य बनकर मातृरूपा हो जाती हूँ ।
जब तुम
मुझे हाथों से स्पर्श करते हो
तथा चाक पर चढ़ाकर घुमाने लगते हो
तब मैं –
कुंभ और कलश बनकर
जल लाती तुम्हारी अंतरंग प्रिया हो जाती हूँ ।
जब तुम मेले में मेरे खिलौने रूप पर
आकर्षित होकर मचलने लगते हो
तब मैं –
तुम्हारे शिशु-हाथों में पहुँच प्रजारूपा हो जाती हूँ ।

पर जब भी तुम
अपने पुरुषार्थ-पराजित स्वत्व से मुझे पुकारते हो
तब मैं–

अपने ग्राम्य देवत्व के साथ चिन्मयी शक्ति हो जाती हूँ
(प्रतिमा बन तुम्हारी आराध्या हो जाती हूँ)
विश्वास करो
यह सबसे बड़ा देवत्व है, कि—
तुम पुरुषार्थ करते मनुष्य हो
और मैं स्वरूप पाती मृत्तिका।

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. रौंदे और जोते जाने पर भी मिट्टी किस रूप में बदल जाती है?
2. मिट्टी के 'मातृरूपा' होने का क्या आशय है?
3. जब मनुष्य उद्यमशील रहकर अपने अहंकार को पराजित करता है, तो मिट्टी उसके लिए क्या बन जाती है?

लिखित

1. 'मृत्तिका' कविता में पुरुषार्थी मनुष्य के हाथों आकार पाती मिट्टी के किन-किन स्वरूपों का उल्लेख किया गया है?
2. मिट्टी के किस रूप को 'प्रिया रूप' माना है? क्यों?
3. मिट्टी प्रजारूपा कैसे हो जाती है?
4. पुरुषार्थ को सबसे बड़ा देवत्व क्यों कहा गया है?
5. मिट्टी और मनुष्य में आप किसकी भूमिका को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं और क्यों?
6. **भाव स्पष्ट कीजिए**

   (क) पर जब भी तुम
   अपने पुरुषार्थ-पराजित स्वत्व से मुझे पुकारते हो,
   तब मैं —
   अपने ग्राम्य देवत्व के साथ चिन्मयी शक्ति हो जाती हूँ

(ख) यह सबसे बड़ा देवत्व है, कि –
तुम पुरुषार्थ करते मनुष्य हो
और मैं स्वरूप पाती मृत्तिका।

योग्यता-विस्तार

1. मिट्टी और मनुष्य के अटूट संबंध के विषय में एक छोटा-सा लेख लिखिए।
2. 'देवत्व कोई अलौकिक वस्तु नहीं, बल्कि वह मनुष्य का पुरुषार्थ ही है।' इस विषय पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
3. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की 'मिट्टी की महिमा' कविता को खोजकर पढ़िए और प्रस्तुत कविता से उसकी तुलना कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

मात्र	:	केवल
कुंभ-कलश	:	घड़ा, कलसा
मृत्तिका	:	मिट्टी
विदीर्ण करना	:	चीरना, फाड़ना
अंतरंग	:	घनिष्ठ, निकटतम
जल लाती	:	घड़े में जल भरकर लाने वाली प्रिया, जीवन में सरसता का संचार करने वाली
मातृरूपा	:	माँ-जैसी
प्रजारूपा	:	संतान-जैसी
स्वत्व	:	अधिकार
ग्राम्यदेव	:	लोक देवता, ग्रामवासियों के देवता
चिन्मयी शक्ति	:	ईश्वर की सत्ता, चेतनमयी शक्ति
आराध्य	:	आराधना के योग्य
पुरुषार्थ	:	उद्योग, उद्यम
पुरुषार्थ-पराजित स्वत्व से	:	उद्योग द्वारा अहंभाव का त्याग करते हुए

जगदीश गुप्त

नई कविता के प्रतिष्ठित कवि जगदीश गुप्त का जन्म सन 1924 में ज़िला हरदोई के शाहाबाद कस्बे में हुआ। शिक्षा शाहाबाद, देहरादून, सीतापुर, मुरादाबाद तथा कानपुर आदि नगरों में हुई। सन 1950 से 1987 तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्राध्यापन-कार्य करते रहे। उन्होंने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग में उच्च शोध की विशेष योजना के अंतर्गत भी कार्य किया। वे 'परिमल' संस्था के संस्थापक सदस्य थे तथा अनेक वर्षों तक उसके संयोजक भी रहे। सन 2001 में उनका निधन हो गया। उनकी प्रमुख प्रकाशित कृतियाँ निम्नलिखित हैं –

कविता-संग्रह : नाव के पाँव, शब्द दंश, हिम-विद्ध, युग्म।
समीक्षा : नयी कविता – स्वरूप और समस्याएँ।
अन्य संग्रह : रीति काव्य-संग्रह, काव्य-सेतु, कवितांतर।
संपादन : नई कविता(आठ अंक) (1954 से 1969 के बीच)

जगदीश गुप्त में आधुनिक दृष्टि के साथ-साथ भारतीय शास्त्रीय रुचि भी परिलक्षित होती है। उनका काव्य प्रायः दो समानांतर स्थितियों को अभिव्यक्त करता है। प्रथम यथार्थवादी दृष्टि, जो जीवन की विसंगतियों एवं उसकी कुरूपताओं को उद्घाटित करती है। दूसरी रोमांटिक दृष्टि, जो प्रकृति एवं मानव-सौंदर्य के रागात्मक स्वरूप को अभिव्यक्त करती है। नई कविता के प्रवक्ताओं में जगदीश गुप्त अपनी निष्ठा, साहस एवं सैद्धांतिक आग्रह के लिए विख्यात रहे हैं।

जिस झरोखे से निहारा कविता में हिमालय के नित नवीन सौंदर्य का कोमल एवं हृदयग्राही अंकन है। हिमालय को जिस कोण से भी देखें, उसके सौंदर्य के विविध आयामों में कोई अंतर नहीं आता। वह 'वही' बना रहता है। यह छोटी-सी रचना हिमालय की शृंखलाओं, वनों, पाषाणों, नदी-निर्झर आदि के अछूते सौंदर्य को उद्घाटित करती है।

सच है महज़ संघर्ष ही कविता में कवि का मानना है कि जीवन में संघर्ष ही सत्य है और इस सत्य को हम सभी को सहज रूप में स्वीकार करना चाहिए। कवि ने बाधाओं और कठिनाइयों से मुँह मोड़ने वाले जीवन को तुच्छ बताया है। जीवन-संघर्ष में ही जीवन की जीत बताते हुए कवि ने प्रतिकूल परिस्थितियों से होने वाले कष्टों का साहसपूर्ण सामना करने की प्रेरणा दी है।

1. जिस झरोखे से निहारा

जिस झरोखे से निहारा
खुले कोरे पृष्ठ–जैसा
वही उज्ज्वल
वही पावन
रूप

वही उठती उर्मियों–सी शैलमालाएँ
वही अंतश्चेतना–सा गहन वन विस्तार
वही उर्वर कल्पना–से फूटते जलस्रो–
वही दृढ़ मांसल भुजाओं–से कसे पाषाण
वही चंचल वासना–सी बिछलती नदियाँ
पारदर्शी वही शीशे की तरह आकाश
और किरनों से झलाझल
वही मुझको वेधते हिमकोण

जिस झरोखे से निहारा
वही उज्ज्वल
वही पावन
वही निर्मल
रूप

2.सच है महज़ संघर्ष ही

सच हम नहीं सच तुम नहीं
सच है महज़ संघर्ष ही ।
संघर्ष से हट कर जिए तो क्या जिए हम या कि तुम ।
जो नत हुआ वह मृत हुआ ज्यों वृंत से झर कर कुसुम ।

जो लक्ष्य भूल रुका नहीं ।
जो हार देख झुका नहीं ।
जिसने प्रणय पाथेय माना जीत उसकी ही रही ।
सच हम नहीं सच तुम नहीं ।

ऐसा करो जिससे न प्राणों में कहीं जड़ता रहे ।
जो है जहाँ चुपचाप अपने-आप से लड़ता रहे ।
जो भी परिस्थितियाँ मिलें ।
काँटे चुभें, कलियाँ खिलें ।
हारे नहीं इंसान, है संदेश जीवन का यही ।
सच हम नहीं सच तुम नहीं ।

हमने रचा आओ हमीं अब तोड़ दें इस प्यार को ।
यह क्या मिलन मिलना वही जो मोड़ दे मँझधार को ।
जो साथ फूलों के चले ।
जो ढाल पाते ही ढले ।

वह ज़िंदगी क्या ज़िंदगी जो सिर्फ़ पानी-सी बही ।
सच हम नहीं सच तुम नहीं ।

संसार सारा आदमी की चाल देख हुआ चकित ।
पर झाँक कर देखो दृगों में, हैं सभी प्यासे थकित।
जब तक बँधी है चेतना ।
जब तक हृदय दुख से घना ।
तब तक न मानूँगा कभी इस राह को ही मैं सही ।
सच हम नहीं सच तुम नहीं ।

अपने हृदय का सत्य अपने आप हमको खोजना ।
अपने नयन का नीर अपने आप हमको पोंछना ।
आकाश सुख देगा नहीं ।
धरती पसीजी है कहीं?
जिससे हृदय को बल मिले है ध्येय अपना तो वही ।
सच हम नहीं सच तुम नहीं ।
सच है महज़ संघर्ष ही ।

प्रश्न-अभ्यास

1.जिस झरोखे से निहारा

मौखिक

1. हिमालय के दृश्य को कवि ने 'खुले कोरे पृष्ठ-सा' क्यों कहा है?
2. हिमालय के कोण कवि को किस प्रकार 'बेध' रहे हैं?
3. कविता के आधार पर निम्नलिखित उपमेयों और उपमानों को उपयुक्त क्रम में बताइए –

लहरें	वनों का विस्तार
कल्पना	पर्वत श्रेणियाँ
अंतर्बोध	नदियाँ
शक्तिशाली भुजाएँ	पानी के स्रोत
शीशा	कोरा पृष्ठ
वासनाएँ	पत्थर
	आकाश

लिखित

1. 'उर्वर कल्पना' का क्या आशय है? उसकी तुलना पानी के स्रोत से क्यों की गई है?
2. बार-बार 'वही' शब्द के प्रयोग से कवि क्या व्यंजित करना चाहता है?
3. कविता के आधार पर हिमालय की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
4. कविता से उन अंशों को छाँटिए जिनमें मूर्त वस्तुओं की तुलना अमूर्त से की गई है।

योग्यता-विस्तार

1. हिमालय के कुछ दृश्य-कार्डों का संग्रह कर एक एलबम बनाइए और उनकी परिचयोक्तियों के रूप में इस कविता के वाक्यांशों को उद्धृत कीजिए।

2. हिमालय में स्थित किसी स्थल की यात्रा कीजिए और हिमालय की सुंदरता पर एक लेख लिखिए।

2. सच है महज़ संघर्ष ही

मौखिक

1. कवि की दृष्टि में जीवन में सच क्या है?
2. पेड़ से झरे फूल-सा किसे बताया गया है और क्यों?
3. जीवन मार्ग में कौन विजयी होता है?
4. जीवन मार्ग के संदर्भ में काँटे और कलियाँ क्या हैं?
5. अपने आप से लड़ने का क्या आशय है?

लिखित

1. कवि ने जीवन का वास्तविक संदेश किसे माना है?
2. पानी-सा बहने वाला जीवन क्या है?उसे कवि व्यर्थ क्यों मानता है?
3. जीवन-संघर्ष में कैसे लोग विजयी होते हैं?
4. कवि कैसे जीवन-मार्ग को उचित नहीं मानता?
5. जीवन मार्ग की अड़चनों और सुविधाओं के लिए कवि ने किन प्रतीकों का प्रयोग किया है?
6. कवि ने अपने हृदय को सशक्त बनाने के लिए क्या मार्ग सुझाया है?
7. **आशय स्पष्ट कीजिए**

   (क) जो नत हुआ वह मृत हुआ

   (ख) अपने नयन का नीर अपने आप हमको पोंछना

   (ग) सच है महज़ संघर्ष ही

योग्यता-विस्तार

दिनकर, बच्चन, गोपालसिंह नेपाली, शिवमंगल सिंह 'सुमन' आदि कवियों द्वारा रचित संघर्ष करने की प्रेरणा देने वाले कुछ गीतों का संग्रह कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

जिस झरोखे से निहारा

झरोखा	:	छोटी खिड़की, गवाक्ष
उर्मियाँ	:	लहरें
मांसल	:	ठोस मांसपेशियों वाली
वासना	:	आवेगात्मक इच्छा
बिछलती	:	फिसलती, बहती
बेधते	:	छेदते, आहत करते

सच है महज़ संघर्ष ही

नत हुआ	:	झुक गया
वृंत	:	डंठल
प्रणय	:	प्रेम
पाथेय	:	मार्ग के लिए सहारा
नयन का नीर	:	आँसू
पसीजना	:	पिघलना, द्रवित होना
जो साथ फूलों के चले	:	सुविधा भोगी
जो ढाल पाते ही ढले	:	अवसरवादी



कुँवर नारायण

कुँवर नारायण का जन्म सन 1927 में फ़ैजाबाद उत्तर प्रदेश में हुआ। उन्होंने अंग्रेज़ी साहित्य में एम.ए.किया। आरंभ से ही उन्हें घूमने-फिरने का शौक था। उन्होंने चेकोस्लोवाकिया, पोलैंड, रूस और चीन आदि देशों की यात्रा की और विभिन्न प्रकार के अनुभव प्राप्त किए।

कुँवर नारायण ने कविता लेखन का आरंभ अंग्रेज़ी से किया। किंतु शीघ्र ही वे हिंदी की ओर उन्मुख हुए और नियमित रूप से हिंदी में लिखते रहे। कुँवर नारायण लंबे समय तक 'युग चेतना' पत्रिका से जुड़े रहे किंतु पत्रिका के बंद हो जाने पर वे अपने निजी व्यवसाय (मोटर उद्योग) में व्यस्त हो गए।

कुँवर नारायण के चार कविता संग्रह प्रकाशित हुए हैं–**चक्रव्यूह, परिवेश हम तुम, कोई दूसरा नहीं** और **इस बार**। नचिकेता की कथा पर उन्होंने एक खंडकाव्य **आत्मजयी** लिखा है, जो 1965 में प्रकाशित हुआ।

कुँवर नारायण को हिंदी संसार में पर्याप्त सम्मान मिला। व्यास सम्मान, भारतीय भाषा परिषद् पुरस्कार तथा साहित्य अकादमी पुरस्कार द्वारा वे सम्मानित किए गए।

कुँवर नारायण के काव्य में आज के जीवन का यथार्थ (विसंगति, द्वंद्व, असंतोष आदि) की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। उन्हें जीवन का व्यापक अनुभव है, जिसका उपयोग वे अपने काव्य में तर्कपूर्ण ढंग से कर पाए हैं।

कुँवर नारायण की काव्य-भाषा में परंपरागत छंद का आग्रह न होकर भी एक आंतरिक लय और गति है, जो उसे काव्यात्मक गीतिमयता प्रदान करती है।

एक अजीब दिन कविता आज के जीवन में सामान्य-सी मानी जाने वाली घटनाओं की असामान्य प्रतिक्रियाओं पर एक व्यंग्य है। आज का जीवन कदम-कदम पर दुर्घटनाओं, अपमान, अविश्वास और धोखाधड़ी का पुंज बनकर रह गया है। यहाँ तक कि हम अपने स्वरूप को भी भूलने के लिए विवश हो गए हैं। जिस दिन यह सब न घटे, वह दिन निश्चय ही अजीब कहा जाएगा।

सवेरे-सवेरे कविता में कार्तिक मास की प्रातःकालीन वायु की पावनता, शीतलता और उसके मधुर क्रिया-कलापों का चित्रण हुआ है। कवि ने उसे सुबह-सुबह गंगा नहाकर ठंड से ठिठुरती हुई घर लौटती माँ के समान बताया है, जो अपने शीतल, पावन और ममत्व भरे स्पर्श से सोए हुए बच्चे को प्यार से जगाती है।

1. एक अजीब दिन

आज सारे दिन बाहर घूमता रहा
और कोई दुर्घटना नहीं हुई।
आज सारे दिन लोगों से मिलता रहा
और कहीं अपमानित नहीं हुआ।
आज सारे दिन सच बोलता रहा
और किसी ने बुरा न माना।
आज सबका यकीन किया
और कहीं धोखा नहीं खाया।
और सबसे बड़ा चमत्कार तो यह
कि घर लौटकर मैंने किसी और को नहीं
अपने ही को लौटा हुआ पाया।

2. सवेरे-सवेरे

कार्तिक की हँसमुख सुबह।
नदी-तट से लौटती गंगा नहा कर
सुवासित भीगी हवाएँ
सदा पावन
माँ सरीखी

अभी जैसे मंदिरों में चढ़ा कर खुशरंग फूल
ठंड से सीत्कारती घर में घुसी हों,
और सोते देख मुझको जगाती हों—
सिरहाने रख एक अंजलि फूल हरसिंगार के,
नर्म ठंडी उँगलियों से गाल छूकर प्यार से,
बाल बिखरे हुए तनिक सँवार के...

प्रश्न-अभ्यास

1. एक अजीब दिन

मौखिक

1. आजकल लोग निम्नलिखित स्थितियों में प्रायः कैसी घटनाओं की आशंका किया करते हैं—
   (क) दिनभर घर से बाहर रहना
   (ख) सच बोलना
   (ग) सबका विश्वास कर लेना
   (घ) लोगों से खुलकर मिलना-जुलना
2. सच बोलने पर लोग बुरा क्यों मान जाते हैं?

लिखित

1. कवि ने चर्चित दिन-विशेष को 'एक अजीब दिन' क्यों कहा है? उसके अनोखेपन को स्पष्ट कीजिए।
2. 'एक अजीब दिन' कविता निराशा के वातावरण में भी आशावादिता का संदेश देती है—कविता के आधार पर इस कथन को स्पष्ट कीजिए।
3. 'अजीब दिन' के चमत्कारों में कवि ने सबसे बड़ा चमत्कार किसे कहा है?

4. **आशय स्पष्ट कीजिए**

   (क) आज सारे दिन लोगों से मिलता रहा और कहीं अपमानित नहीं हुआ।

   (ख) आज सारे दिन सच बोलता रहा और किसी ने बुरा नहीं माना।

योग्यता-विस्तार

किसी दिन की ऐसी रोचक घटनाओं को डायरी के रूप में लिखिए, जब ऐसा कुछ हुआ हो जिसकी आपको आशा नहीं थी।

2. सवेरे-सवेरे

मौखिक

1. कार्तिक की प्रातःकालीन हवाओं की तुलना किससे की गई है?
2. 'हँसमुख सुबह' कथन का क्या अभिप्राय हो सकता है?
3. 'सिरहाने रख एक अंजलि फूल हरसिंगार के' कथन से व्यंजित होता है–

   (क) पुत्र के आसपास भीनी गंध फैलाना

   (ख) पुत्र के प्रति असीम आशीर्वाद प्रकट करना

   (ग) पुत्र को नींद से जगाना

   (घ) पुत्र के उज्ज्वल भविष्य की कामना करना

लिखित

1. समीर को 'माँ सरीखी' क्यों कहा गया है?
2. कविता के आधार पर संतान के प्रति माँ के प्यार भरे व्यवहार को स्पष्ट कीजिए।
3. निम्नलिखित कथनों का साम्य माँ और हवा दोनों संदर्भों में स्पष्ट कीजिए–

   (क) नदी-तट से लौटती गंगा नहाकर

   (ख) ठंड से सीत्कारती घर में घुसी हों

   (ग) नर्म ठंडी उँगलियों से गाल छूकर प्यार से

4. काव्य-सौंदर्य स्पष्ट कीजिए–

   (क) नदी-तट से लौटती गंगा नहाकर सुवासित भीगी हवाएँ

   (ख) सिरहाने रख एक अंजलि फूल हरसिंगार के

   (ग) नर्म ठंडी उँगलियों से गाल छूकर प्यार से

   (घ) बाल बिखरे हुए तनिक सँवार के...

योग्यता-विस्तार

1. 'पतझड़ की एक शाम' विषय पर एक अनुच्छेद लिखिए।
2. एक छोटा-सा गीत लिखिए, जिसकी पहली पंक्ति हो–

   'जब मुझे माँ ने जगाया'

शब्दार्थ और टिप्पणी

हँसमुख सुबह	:	खिला प्रभात, ऐसी भोर जो हमें प्रसन्न कर दे, जिससे हमारा मन खिल उठे
सुवासित	:	सुगंधित
पावन	:	पवित्र
खुशरंग	:	चटक रंगों वाले
सीत्कारना	:	ठंड के कारण सी-सी करना
हरसिंगार	:	एक फूल का नाम, पारिजात-पुष्प



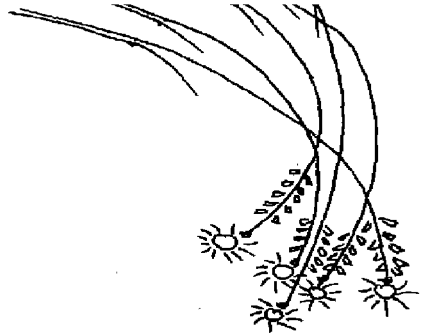
कीर्ति चौधरी

कीर्ति चौधरी का जन्म उत्तर प्रदेश के उन्नाव जनपद के अंतर्गत नईमपुर गाँव में सन 1935 में हुआ । इनका वास्तविक नाम कीर्ति बाला सिन्हा है। गाँव में कीर्ति के पिता जी की खेती और ज़मींदारी थी। प्रारंभिक शिक्षा इसी गाँव में प्राप्त कर वे उन्नाव चली आईं। उच्च शिक्षा के लिए कानपुर गईं और यहाँ से उन्होंने एम.ए. तक पढ़ाई की। इनके पिता व्यवसाय से प्रकाशक थे। घर में पुस्तकों का वातावरण था। स्वाभाविक ही था कि पुस्तकों में कीर्ति की रुचि बढ़ती गई। माँ श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिन्हा गीत लिखती थीं और उन्हें कवि सम्मेलनों में गाती थीं। गाँव के प्राकृतिक परिवेश ने सहज रूप से इनके मन को कविता लेखन की ओर आकृष्ट किया।

कीति चौधरी ने बहुत कम लिखा है, पर जो लिखा वह उल्लेखनीय है। कविताओं की विशिष्टता का प्रमाण यह तथ्य है कि इनकी कविताओं को **तीसरा सप्तक** में स्थान दिया गया है, जो हिंदी की नई कविता का मानक ग्रंथ माना जाता है।

वक्त कविता में अपनी सहज भावाभिव्यक्तियों को दबाने और निरंतर संवेदन शून्यता की ओर बढ़ते मनुष्य-जीवन के प्रति खिन्नता प्रकट की गई है।

दूसरी कविता **प्रतीक्षा** में कवयित्री उस सुदूर भविष्य की धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करने का संकल्प प्रकट करती है, जिसमें आज का पौधा कल गंधयुक्त फूलों से लद जाएगा। अभी तो वह नितांत जिज्ञासाहीन होकर केवल बीज बोने, अंकुरित होने पर उसे खाद-पानी आदि से पल्लवित-पुष्पित करने के कर्म में ही लीन रहना चाहती है।



1. वक्त

यह कैसा वक्त है
कि किसी को कड़ी बात कहो
तो भी वह बुरा नहीं मानता !
जैसे घृणा और प्यार के जो नियम हैं
उन्हें कोई नहीं जानता ।
खूब खिले हुए फूल को देख कर
अचानक खुश हो जाना,
बड़े स्नेही सुहृद की हार पर
मन भर लाना,
झुँझलाना,
अभिव्यक्ति के इन सीधे-सादे रूपों को भी
सब भूल गए
कोई नहीं पहचानता ।

यह कैसी लाचारी है
कि हमने अपनी सहजता ही
एकदम बिसारी है ।
इसके बिना जीवन कुछ इतना कठिन है

कि फ़र्क जल्दी समझ में नहीं आता —
यह दुर्दिन है या सुदिन है ।

जो भी हो संघर्षों की बात तो ठीक है ।
बढ़ने वाले के लिए
यही तो एक लीक है ।
फिर भी दुख-सुख से यह कैसी निस्संगता !
कि किसी को कड़ी बात कहो
तो भी वह बुरा नहीं मानता !
यह कैसा वक्त है?

2. प्रतीक्षा

करूँगी प्रतीक्षा अभी ।
दृष्टि उस सुदूर भविष्य पर टिका कर
फिर करूँगी काम।
प्रश्न नहीं पूछूँगी,
जिज्ञासा अंतहीन होती है
मेरे लिए काम जैसे
जपने को एक नाम ।
मैं ही तो हूँ
जिसने उपवन में
बीजों को बोया है ।
अंकुर के उगने से बढ़ने तक
फलने तक
धैर्य नहीं खोया है

एक-एक कोंपल की चाव से
निहारी है बाट सदा ।
देखे हैं
शिशु की हथेली मसृण
हरित किसलय दल
कैसे बढ़ आते हैं ।
दुर्बल कृश अंग लिए उपजे थे
वे ही परिपुष्ट बने
झूम लहराते हैं ।
मैं ही तो हूँ
जिसने प्यार से सँवारी है
डाल-डाल
आएँगी कलियाँ
फिर बड़े गझिन गुच्छों में
फूलेंगे फूल लाल
करूँगी प्रतीक्षा अभी
पौधा है वर्तमान
हर दिन हर क्षण ।
नव कोंपल पल्लव समान
हरियाए, लहराए,
यत्न से सँवारूँगी।
आखिर तो
बड़े गझिन गंध-युक्त गुच्छों-सा
आएगा भविष्य कभी ।
करूँगी प्रतीक्षा अभी ।

प्रश्न-अभ्यास

1.वक्त

मौखिक

1. कविता में किस भाव की प्रधानता है–
   (क) शिकायत
   (ख) उलझन
   (ग) खिन्नता
   (घ) लाचारी
2. कड़ी बात कहने पर भी लोग बुरा क्यों नहीं मानते?
3. प्रगति के लिए संघर्ष आवश्यक है– यह बात कविता की किन पंक्तियों से व्यक्त होती है?
4. दुख-सुख के प्रति उदासीनता आज के मनुष्य की किस मनःस्थिति की ओर संकेत करती है?

लिखित

1. कवयित्री आज के जीने के ढंग से खिन्न क्यों है ?
2. अभिव्यक्ति के किन सीधे-सादे रूपों के उदाहरण कविता में दिए गए हैं?
3. सहज अभिव्यक्ति के कुछ और उदाहरण दीजिए ।
4. मानवी स्वभाव की सहजता को भुला देने का परिणाम क्या हुआ है?

योग्यता-विस्तार

1. आज की जिन परिस्थितियों ने मनुष्य को असहज और संवेदन शून्य बना दिया है, उनका विवेचन कीजिए।
2. कबीर के निम्नलिखित दोहे को पढ़िए–
   जाणे हरियर रूखड़ा, वा पाणी को नेह।
   सूखा काठ न जाणई, कबहूँ बूठा मेह।।
   बताइए, वृक्ष का सहज रूप क्या है? सूखे काठ पर वर्षा का प्रभाव क्यों नहीं पड़ता?

2. प्रतीक्षा

मौखिक

1. कवयित्री किसकी प्रतीक्षा करने का संकल्प लेती है?
2. वह भविष्य के प्रति कोई प्रश्न करने से क्यों बचना चाहती है?
3. 'आखिर तो बड़े गझिन गंध-युक्त गुच्छों-सा आएगा भविष्य कभी' इन पंक्तियों में कवयित्री का कौन-सा मनोभाव व्यक्त हुआ है—
   (क) विश्वास और आस्था
   (ख) निराशा और उदासी
   (ग) आशा और धैर्य
   (घ) लगाव और मोह
4. पौधा यदि वर्तमान है तो उसका भविष्य क्या होगा?

लिखित

1. कवयित्री जिस भविष्य की प्रतीक्षा कर रही है, उसके लिए वह क्या योगदान करने का संकल्प लेती है?
2. बीज बोने से लेकर फूल आने तक की विकास यात्रा के जिन पड़ावों पर कवयित्री ने धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा की है, उनका उल्लेख कीजिए।
3. इस कविता में पौधे के बढ़ने, फूलने-फलने की प्रक्रिया के द्वारा मानव जीवन के विकास के संबंध में क्या संकेत मिलता है?
4. व्याख्या कीजिए—
   (क) प्रश्न नहीं पूछूँगी,
   जिज्ञासा अंतहीन होती है
   (ख) पौधा है वर्तमान
   हर दिन हर क्षण।

योग्यता-विस्तार

1. 'शानदार था भूत, भविष्यत भी महान है। अगर सुधारें आप उसे जो वर्तमान है।' उपर्युक्त पंक्तियों की तुलना प्रस्तुत कविता से कीजिए।

2. 'आज के पाथे आज नहीं जलाए जाते' लोकोक्ति का अर्थ बताइए और उसका भाव-पल्लवन कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

वक्त

बिसारना	:	भुला देना
निस्संगता	:	लगाव रहित होना, अनुराग-शून्यता

प्रतीक्षा

निहारी है बाट सदा	:	प्रतीक्षा की है हमेशा
मसृण	:	चिकनी, कोमल
किसलय	:	कोंपलें, नए पत्तों के गुच्छे
कृश	:	कमज़ोर
परिपुष्ट	:	मज़बूत
गझिन	:	घना, गाढ़ा